आध्यात्मिक संकलन

डॉ० हरनारायण सक्सेना

आध्यात्मिक संकलन

डॉ॰ हरनारायण सक्सेना

https://harnarayan-saxena.com/books%2C-video-and-audio

Digital Edition (RMDY) – 13th Oct 2018

“अहंकार से प्रभु नहीं मिलते। चाहे कोई भी साधन करिये, दीनता को तो अपनाना ही होगा”

परम संत डॉ॰ करतार सिंह साहब

(जन्म 13 जून, 1912)

शुभ-कामना

आध्यात्मिक संकलन (भाग-1) के लेखक आदरणीय भाई डॉक्टर हरनारायण सक्सेना जी उन गिने सौभाग्यशाली साधकों में से हैं जिन्हें परम संत महात्मा रामचंद्र जी महाराज से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई। उन्हीं के सदुपदेशों और मार्गदर्शन के साथ हमारे खानदान के कई सिद्ध बुजुर्गों की सत्संगति और आशीर्वाद से मिले ज्ञान और अनुभव का निचोड़ संग्रह के लेखों में विद्यमान है।

संत मत के सिद्धांतों का प्रतिपादन और धर्म शास्त्रों के उदाहरणों व कहावतों से पुष्टीकरण, पुस्तक के गंभीर लेखों - जैसे हमारा ध्येय, सद्गुरु की खोज, समर्पण, निष्काम कर्म, ध्यान आदि - में सहज और सरल भाषा में किया गया है। बीच-बीच में संत सूफियों व पौराणिक पात्रों की रोचक लघु कथाओं द्वारा पाठकों को शिक्षाप्रद प्रेरणा मिलेगी।

आदरणीय भाई साहब अपने साथ 60-70 वर्षों के अनुभव, अभ्यास और अध्ययन का विचार-विवेचन-सार समय-समय पर हमारी पत्रिका के माध्यम से देते रहे हैं और अभी भी इस कार्य से संलग्न है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत संकलन का प्रेमी जिज्ञासु, इन की पूर्व प्रकाशित पुस्तक "यादें" जैसा ही स्वागत करेंगे।

मेरी शुभकामना और प्रार्थना है कि गुरु भगवान सक्सेना जी को दीर्घायु दें और साहित्य सृजन की सक्रिय सामर्थ्य प्रदान करें।

रामनगर, नई दिल्ली
दिनांक – मार्च, 1994

(डॉ० करतार सिंह)
अध्यक्ष आचार्य, रामाश्रम सत्संग (रजि०)
गाजियाबाद (उ० प्र०)

विषय-सूची

प्राक्कथन 11

1. श्री श्री सद्गुरु स्तवन 14

2. हमारा ध्येय 15

3. दो दोस्त 22

4. सद्गुरु की खोज 25

5. फ़रिश्ता 31

6. समर्पण 34

7. संत रविदास 41

8. चेतावनी 44

9. पंडित जी 49

10. निष्काम कर्म 52

11. परेशानियाँ 57

12. स्वार्थ और परमार्थ 58

13. भक्त और भगवान 60
(भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा) 61

14. स्थूल सूक्ष्म और कारण 64

15. भक्त और भगवान 70
(नारद जी) 70

16. ध्यान 74

17. भक्त और भगवान 80
(द्रोपदी) 80

समर्थ सद्गुरु परम संत

महात्मा श्री रामचन्द्र जी

फतेहगढ़ (उ० प्र०)

जन्म: 2 फरवरी 1873 निर्वाण: 14 अगस्त 1931

परम सन्त महात्मा श्री रघुवर दयाल जी

कानपुर (उ० प्र०)

जन्म 7 अक्टूबर 1875 निर्वाण 7 जून 1947

परम संत महात्मा कृष्णस्वरूपजी
जयपुर (राजस्थान)

परम सन्त डॉ॰ हरनारायण जी सक्सेना

जयपुर

http://www.harnarayan-saxena.com/home.html

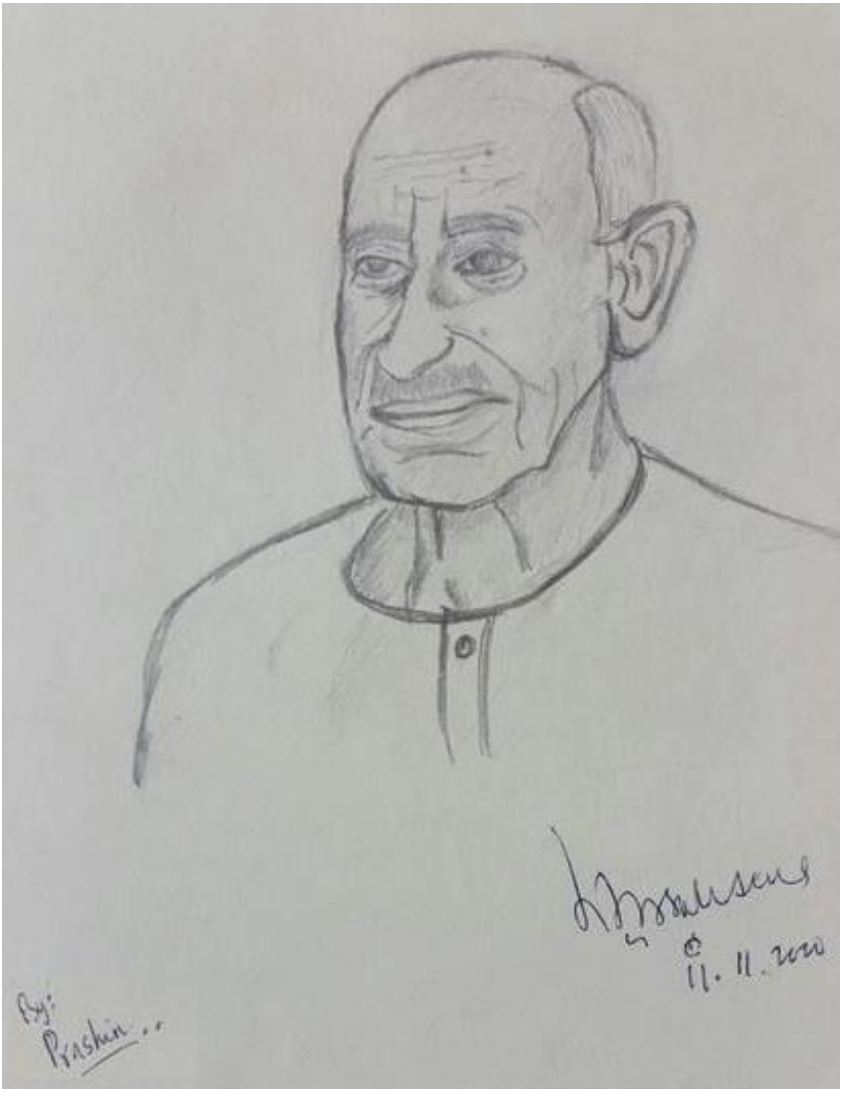
By: Prashin..
11. 11. 2020

प्राक्कथन

सन 1925 में कानपुर नगर में अपनी शिक्षा के समय ही मुझे पहले श्रीमान् महात्मा मुंशी रघुबर दयाल जी (चच्चा जी महाराज) के और फिर श्रीमान् महात्मा मुंशी रामचन्द्र जी महाराज (लालाजी महाराज) के दर्शन हुए । तभी से मेरे आध्यात्मिक जीवन का आरंभ हुआ और मार्च, सन् 1928 के एक पवित्र दिन कानपुर में ही मुझे श्रीमान् लाला जी महाराज द्वारा दीक्षा भी मिल गई।

सन 1930 में अपनी कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके लौटने पर सन 1931 में (उस समय की) जयपुर स्टेट में मुझे सेवा का कार्य मिल गया और सन 1966 में (सन् 1949 में बने) राजस्थान राज्य की सेवा से निवृत्ति (Retirement) मिल गई।

सन् 1925 से सन् 1966 तक इन 41 वर्षों में मेरा संपर्क गुरु भगवान श्रीमान् लाला जी महाराज से तथा उनके आध्यात्म मार्ग के सभी संतों से रहा। उन सब की दया और कृपा का पात्र भी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन सब के आदेशों तथा अपने सामर्थ्य के अनुसार थोड़ी बहुत आध्यात्मिक सेवा का कार्य भी करता रहा।

राज्य सेवा से निवृत्ति के पश्चात कई वर्ष तक होमियोपैथिक चिकित्सक के रूप में घर पर ही क्लिनिक चलाता रहा जो केवल अपनी रुचि के कारण, व्यावसायिक रूप से नहीं। फिर परिस्थितियों वश इस कार्य को भी छोड़ना पड़ा जब कि मुझे होमियो चिकित्सा का रजिस्ट्रेशन नंबर भी 83 का प्राप्त हुआ था। अब मेरे पास केवल अपने गुरु भगवान के द्वारा चलाई गई इस आध्यात्मिक पद्धति के प्रचार-प्रसार तथा निर्देशन का कार्य करने को रह गया।

इस क्रम में मैंने कुछ आध्यात्मिक विषयों का लेख, लघु कथा आदि अपनी जानकारी, अनुभव तथा योग्यता के अनुसार लिखना आरंभ किया। गाजियाबाद से प्रकाशित आध्यात्मिक पत्रिका "राम संदेश" में तथा अन्य इसी के अनुरूप मासिक, त्रैमासिक पत्रिकाओं में निकलने लगे। इन लेखों द्वारा विशेषकर लेख माला "यादें"

द्वारा सन 1977 से 1979 तक जो इसी "राम संदेश" में प्रकाशित हुई। मेरा परिचय रामाश्रम सत्संग परिवार से घनिष्ठता का हो गया।

यह यादें की श्रृंखला, जो नीचे लिखे परम संतों के साथ अपने निजी संपर्क द्वारा अनुभवों, घटनाओं आदि के विषय में विस्तार पूर्वक लिखा गया है, सन 1982 में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई और 1990 में इनका द्वितीय संस्करण भी निकल गया।

श्रीमान् लालाजी महाराज - फतेहगढ।

श्रीमान् चच्चा जी महाराज - कानपुर।

श्रीमान् हाजी मौलाना अब्दुल्ला ग़नी खान साहब - भोगांव।

श्रीमान् छोटे चच्चा जी महाराज - जयपुर।

श्रीमान् ठाकुर साहब राम सिंह जी - जयपुर।

श्रीमान् महात्मा शिव नारायण दास जी गांधी - कानपुर।

इन "यादें" के अतिरिक्त समय-समय पर प्रकाशित होते रहने वाले आध्यात्मिक लेख तथा लघु कथाओं को भी संग्रह करके सब सत्संगी भ्राता की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है आप सब "यादें" की भांति इस संग्रह को भी अपनाएंगे।

इन लेखों की संख्या इस समय लगभग 40 है और आगे लिखने का क्रम भी चल रहा है। इसके अतिरिक्त हमारी पद्धति के सभी महापुरुषों की जीवनियां भी प्रकाशित की गई है । यदि इन सबको एक पुस्तक में प्रकाशित किया जाए तो पुस्तक का आकार स्वतः ही बड़ा हो जाएगा। अतः हमने इनके छोटी पुस्तकों के अर्थात भागों के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय किया है।

पहला भाग, जिसमें कुछ लेख तो शोध-परक है और कुछ आध्यात्मिक शिक्षाप्रद कथाएँ हैं, आपके हाथों में है। इसी कोटि के अन्य लेख भी आगे के भागों के रूप में आप सब की सेवा में प्रस्तुत करने का कार्यक्रम है।

लेखों के क्रम में यह ध्यान विशेष रूप से रखा गया है कि शोध-परक आध्यात्मिक लेखों के बीच-बीच में रोचक आध्यात्मिक कथाएँ दे दी गई हैं। जिससे पाठकों का मनोरंजन भी साथ-साथ होता है।

विशेषता हमारे श्रीमान् लाला जी महाराज की इस पद्धति में यह है कि यहाँ के सत्संग को धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप स्वतः ही मिल गया है। इसमें हिंदू, सिख, ईसाई, मुसलमान आदि सभी धर्मों के मानने वाले सभी स्त्री-पुरुष ध्यान द्वारा धर्म और जाति की संकीर्णता से ऊपर उठ कर अभ्यास में लीन हो जाते हैं और इन सब धर्मों का बाह्य रूप पीछे रह जाता है।

आशा है हमारे सत्संग परिवार के सभी अभ्यासियों को इससे लाभ होगा और आवश्यक प्रेरणा भी मिलेगी।

गुरु भगवान सबका भला करें।

अक्टूबर 1993

डॉक्टर हरनारायण सक्सेना

जयपुर

1. श्री श्री सद्गुरु स्तवन

हे दीनबंधु दयालु सद्गुरु, रामचंद्र नमाम्यहम् ।
भवताप दारुण दुख विनाशक, सौम्य शांति प्रदायकम् ॥
करुणावतार उदार वत्सल, आत्मज्योति प्रकाशकम् ।
तव चरण मम आश्रय सुपावन अहर्निश भजाम्यहम् ॥

अर्थ - हे दीनबंधु, दयालु, सद्गुरु (महात्मा श्री) रामचंद्र, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप संसार के सारे पापों को हरने वाले हैं, कठिन दुःखों का नाश करने वाले, सुख तथा शांति देने वाले, करुणा (दया) के अवतार हैं, विशाल हृदय वाले, सर्वप्रिय, आत्मा की ज्योति को प्रकाशित करने वाले उदार हैं । आपके चरण (कमल) मेरा पवित्र आश्रय (सहारा) हैं, जिन्हें मैं रात-दिन भजता रहता हूँ।

रचयिता :
पंडित शांति स्वरूप अग्निहोत्री
जयपुर

गुरु भगवान सबका भला करें।

2. हमारा ध्येय

जिस में मिलते सीप मोती,
वह समन्दर और है।
जिसमें पाते हैं खुदा को,
वह भी मन्तर और है।

मोती वाली सीप हर समुद्र में नहीं मिलती। हर सीप में मोती नहीं मिलता। हर बादल से वर्षा नहीं होती। हर वर्षा से खेत को लाभ भी नहीं होता। इसी तरह ईश्वर को पाने की राह बतलाने वाले संत भी आसानी से नहीं मिलते। फिर वे संत भी हर एक को भगवान तक नहीं पहुंचा देते। मगर यह सच है कि सच्ची लगन से ढूंढने वालों को सौभाग्य से सद्गुरु मिल जाते हैं। साधारण कोटि के मनुष्य उन्हें पहचान ही नहीं पाते, उनसे लाभ नहीं ले पाते। कुछ लोग उनकी परीक्षा भी लेते हैं और अपने हिसाब से उन्हें इस योग्य नहीं पाते कि इनसे उन्हें रास्ता मिल सकता है। कुछ लोग तो इनके पास यह इच्छा लेकर आते हैं कि "हमें दर्शन करा दो।" उनकी समझ में किसी भी महात्मा कि यह एक सरल पहचान है। उन्हें यही उत्तर देना पड़ता है कि आपको कहां से कराएँ हमें ही नहीं हुए।

इतिहास में ऐसे दृष्टांत कहीं-कहीं मिलते हैं कि मृत्युलोक के मनुष्यों को दर्शन हुए - परंतु जिसे हम दर्शन कहते हैं क्या वही दर्शन होते हैं ? क्या हम इन संसारी आंखों से ईश्वर को देख सकते हैं ? क्या हम में इतनी सामर्थ्य है कि दर्शन करें तथा अपने साथियों को बतला सके कि ईश्वर की आकृति तथा रंग रूप कैसा है ?

यों तो भगवान के दर्शन नित्य तथा निःशुल्क होते हैं। आप जब चाहें जितनी बार भगवान के मंदिर में पधारिए और दर्शन कीजिए। भगवान का जो भी रूप आपको पसंद हो - उसी रूप में दर्शन कीजिए। भगवान का राम आपको धनुष बाण लिए हुए ,भगवान कृष्ण मोर पंख धारण किए हुए बांसुरी लिए हुए, भगवान

शंकर जटा-जूट सर्प धारण किये हुए, श्री हनुमान गदा पर्वत धारण किए हुए इत्यादि मिलेंगे। इनमें से चाहे जिसके दर्शन जितनी बार चाहे कीजिए - चाहे तो पुजारी के लिए पैसा रुपया चढ़ा दीजिए अन्यथा वैसे ही दर्शन कर लीजिए, जैसी आपकी श्रद्धा हो।

ऐसे लोगों से कभी-कभी हम यह भी पूछ लेते हैं कि यदि आप को दर्शन मिल गए तो इससे आपको क्या लाभ होगा ? वे यह कुछ ठीक-ठीक नहीं बतला पाते। यदि कुछ बतलाया भी तो वे सिर पैर की ऊटपटाँग कुछ बातें बतला देते हैं - जिससे उनके प्रश्न का उत्तर वह स्वयं ही पा जाते हैं - या उनकी यह समझ में आ जाता है कि उनका यह प्रश्न कितना खोखला तथा निरर्थक है।

ईश्वर के अस्तित्व को सभी मानते हैं। कुछ ऐसे एथीस्ट भी हैं जो यह कुछ नहीं मानते - परंतु वह भी किसी अदृश्य शक्ति को अवश्य मानते हैं जिसके द्वारा सृष्टि मात्र का संचालन होता है। कुछ लोग इसे प्रकृति बतलाते हैं। इसी विचार के मेरे एक मित्र का पुत्र दुर्भाग्यवश बीमार हो गया - अधिक बीमार हुआ तो लगे भगवान की याद करने। भगवान शिव के मंदिर में गए, प्रसाद बोला - हनुमान जी से प्रार्थना की - माता जी के मंदिर में गए इत्यादि। उनके पुत्र की बीमारी का समाचार पाकर हम भी उसे देखने गए तो बोले इसके लिए प्रार्थना कीजिए जिस से ये अच्छा हो जाए। पुत्र तो कुछ समय में अच्छा हो गया, परंतु वे जब हमारे पास आए तो कुछ ढ़ीले हुए दिख पड़ते थे। उन्हें कुछ समझ में आने लगा कि जब डॉक्टर वैद्य जवाब दे देते हैं तो भी भगवान की दया से बीमार अच्छा हो जाता है। आगे चलकर वे ही सज्जन अच्छे अभ्यासी बन गए। कुछ समझ में आने लगा कि प्रकृति अपने नियमानुसार जो काम करती है परंतु इसके ऊपर इसे संचालन तथा नियमित करने की कोई शक्ति भी है।

हमें कपड़ा लेना हो तो बजाज की दुकान पर जाते हैं, दाल मसाला लेने पंसारी के पास और साग लेना हो तो साग की दुकान पर जाते हैं। हिंदी संस्कृत पढ़ना हो तो पंडित जी के पास, उर्दू-फारसी पढ़ना हो तो मौलवी साहब के पास तथा अंग्रेजी पढ़ना हो तो मास्टर साहब के पास जाते हैं। जो वस्तु अथवा विद्या

जहां और जिसके पास है वह आपको दे सकता है। आप पंसारी की दुकान पर कपड़ा और बजाज की दुकान पर मसाला खरीदने तो नहीं जाते।

ठीक यही नियम ईश्वर के नाम का है। जिनके पास है उन्हीं के पास जाने पर मिलेगा - अन्य स्थान पर नहीं मिलेगा। पंडित जी के पास विद्या तथा भक्तों के पास राम नाम मिलेगा। पंडितजी भक्त हो सकते हैं। भक्तों की पहचान अवश्य ही कठिन है। जो अपने आप को भक्त कहते हैं वे भक्त नहीं हैं। जो अपने आप को गुरु कहते हैं वे भी गुरु नहीं है। न भक्तों को अनुयायियों की चाह होती है - और न सच्चे गुरुजनों को शिष्यों की कामना होती है। वह तो अपने ही राम में मस्त हैं उन्हें ये सारा बखेड़ा बढ़ाने के लिए समय अथवा चाह कहां से होगी ? वे कब चाहते हैं कि उनकी मन की शांति तथा इष्ट देव की आराधना में आकर कोई विघ्न ना डाले और उनका ध्यान अपने प्रिय मालिक से खींच कर अन्य कहीं ले जाएं तथा उन्हें जो स्वाद तथा आनंद इसमें मिलता है उसे लेते रहने में बाधा पड़े ?

ऐसे भक्त स्वभाव से ही दयालु होते हैं। उनके पास यदि कोई सच्ची लगन लेकर पहुँचे तो वे अवश्य उसका आदर करते हैं - उसके हृदय में भगवान ने ऐसी लगन पैदा की इसलिए वह आदर के योग्य है। उसे अपना तुच्छ नौकर अथवा चेला-सेवक समझ कर उससे सेवा नहीं लेते न उससे सांसारिक लाभ (धन आदि) की कामना करते हैं - परंतु उसे अपने छोटे भ्राता पुत्र आदि के रूप में ग्रहण करते और उसे ईश्वर नाम का सरल अभ्यास बतलाते हैं - उसके अभ्यास तथा साधन में अपनी आत्मिक शक्ति से सहायता करते हैं धीरे-धीरे उसका अभ्यास पक्का करा देते हैं।

हमारे गुरुजनों का कथन है कि अन्न दान, वस्त्र दान द्रव्य दान आदि से बड़ा विद्या दान है। इससे भी बड़ा दान ब्रह्मा विद्या का दान है। प्रथम प्रकार के दान शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इस से मनुष्य को बड़ा लाभ होता है। भूखे को रोटी मिली, नंगे को कपड़ा मिला। उसकी आवश्यकताएं पूरी हुईं। आपने ये सब उसे देकर उसको संतुष्ट किया। विद्या मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसके पाने से मनुष्य को संसार में अच्छे बुरे का ज्ञान होता है तथा

मानसिक विकास होने से वह संसार के तथा अपने लाभार्थ बड़े-बड़े काम करने की योग्यता पाता और करता हैं।

ब्रह्मा विद्या इनसे भी आगे की विद्या है। इसका संबंध आत्मा से है। मन तथा शरीर आत्मा के साथ है। शरीर स्थूल वस्तु है - इसको चाहे जितना संभाल कर रखिए - खिला पिला कर हृष्ट पुष्ट कीजिए - अंत में उसे छोड़ना ही पड़ता है। सब शारीरिक सुख क्षणिक है। जब तक शरीर है तब तक ही इनका स्वाद आपको मिलता है। परंतु यह सब नाशवान है। हमारे देखते-देखते हमारे साथ बड़े छोटे तथा अन्य बहुत से चले गए और जा रहे हैं। हमें भी इसी तरह सब कुछ छोड़कर एक दिन चले जाना है।

खुदा जाने यह दुनियाँ
जल्वागाहे नाज़ है किसकी।
हज़ारों उठ गए लेकिन,
वही रौनक़ है महफ़िल की॥

मानसिक विद्याओं से जो हमें सुख अथवा शांति मिलती है वह शारीरिक सुख से भिन्न है। इससे हमारे मन का संबंध है। मानसिक शांति कि आजकल संसार में बड़ी आवश्यकता है। जिसे देखो वही परेशान दिख पड़ता है। उसे किसी न किसी प्रकार का अभाव सताये रहता है। कोई धन वैभव के लिए, कोई स्त्री पुत्र के लिए, कोई अन्य अपूर्ण इच्छाओं के लिए अपने आप को दुखी पाता है। यदि कहीं मानसिक शांति मिलती है तो उस और दौड़ता है। क्षणिक शांति के बाद फिर वही परेशानी। यह सब भी नश्वर है। शरीर के साथ मन तो नष्ट नहीं होता तथा कभी-कभी मानसिक शरीर में भी आत्मा को रहना पड़ता है परंतु आगे चलकर उसका नाश हो जाता हैं।

एक आत्मा ही ऐसी वस्तु है जो नाशवान नहीं है। यदि इस के उत्थान तथा निर्मल होने का प्रयत्न किया जाए तो उसका लाभ स्थाई होता है। उसका नाश नहीं होता। यह सब विचार करके ही हमें अपना जीवन मार्ग निश्चित करना चाहिए तथा अपने लिए चिर स्थाई शांति प्राप्त करने के साधन जहां भी मिले खोज

कर निकालना तथा उन्हें ग्रहण करके अभ्यास द्वारा अपने में वह योग्यता पैदा करनी चाहिए जिससे हमें क्षणिक शांति से ही संतोष ना हो परंतु चिर स्थाई शांति प्राप्त हो।

किसी भी सांसारिक विद्या को सीखने के लिए समय लगन तथा गुरु की आवश्यकता होती है। कुछ लोग किताब पढ़ कर भी किसी नई विद्या को सीखने का प्रयत्न करते हैं और उन्हें कुछ जानकारी भी हो जाती है, परंतु जिसे असल विद्या कहते हैं वह तो बिना गुरु के बतलाए, अभ्यास कराए नहीं आती । पहलवान उस्तादों के दांव बताते हैं, पटेबाज तलवार के गुर बतलाते हैं। दोनों में समय तथा गुरु की आवश्यकता है । इसी प्रकार मानसिक विद्या को लीजिए । अंग्रेजी भाषा पढ़ने में एम० ए० की परीक्षा पास करने के लिए कम से कम 12 वर्ष लगते हैं। इसमें उन्हें बहुत से गुरुओं की सहायता लेनी पड़ती है जो। फिर जो पी० एच० डी० के लिए प्रयत्न करते हैं उन्हें भी गुरुओं की सहारा लेना पड़ता है। विद्या में पूर्ण योग्यता प्राप्त करने पर भी उनकी समझ में यही आता है कि अभी तो बहुत-बहुत पढ़ना और जानना बाकी रह गया। बड़े-बड़े विद्वानों का कथन है कि आयु पूरी हो जाती है परंतु किसी भी विद्या में पूर्णता को नहीं पहुंचा जा सकता। जिन्हें हम पूर्ण कहते हैं उन से पूछिए तो स्वयं आपको बताएंगे कि हम पूर्ण नहीं हैं । अभी तो इस विद्या में आगे जानने को बहुत है । इसी प्रकार आप दूसरी हस्तकला, संगीत, भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान आदि विद्याओं को लीजिए, अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि सारे साधन (गुरु समेत) उपलब्ध होते हुए भी हम पूर्णता को नहीं पहुंच सकते। किसी भी एक विद्या में अपनी आंखों से देखकर, कानों से सुन कर, हाथों से काम करके तथा अपने मन, बुद्धि को उसी में लगा कर भी हम पूर्ण नहीं हो सके और जीवन समाप्त होने को आ गया।

सोचने का विषय है कि जब यह बाहरी विद्या, जिसको हम अपने गुरु के मार्गदर्शन होते हुए भी तथा जीवन पर्यंत परिश्रम में अपनी इंद्रियों, बुद्धि, मन आदि का सारा जोर लगाकर पर पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सकते तो यह ब्रह्मा विद्या, जिसका संबंध आत्मा से है, किस प्रकार अपने आप सीख लेंगे ? या जब यह हमें समय मिलेगा तुरत-फुरत सीख लेंगे। पुस्तकों में सारी विद्या लिखी है। गीता पढ़

लेंगे, संस्कृत जानते ही हैं हमें इस में क्या कठिनाई है। ऐसा कहना यह समझना हमारी मूर्खता नहीं तो और क्या है ? जिस मार्ग को हम आंखों से देख नहीं सकते तथा बुद्धि से भी भली-भांति समझ नहीं सकते उसी मार्ग में हमें अपने आप चल लेने का विश्वास एक बहुत बड़ा धोखा है। समय रहते हमें इसे समझना चाहिए और मन, कर्म, वचन से उस विद्या को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए जिससे हमारा सन्मार्ग निश्चित होकर हमें उस पर चलाने वाला दिग्दर्शक, सहायक प्राप्त हो जाए। संतों की भाषा में ऐसे व्यक्तियों को ही सद्गुरु कहते हैं।

सांसारिक सुख हमें इस प्रकार घेरे रहते हैं कि हमें हर समय उन्हीं के विषय में सोचना तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों को जुटाने से अवकाश (फुर्सत) नहीं मिलती। सुख के साथ दुःख भी होते हैं। परंतु हम दुःखों के स्वाभाविक रूप को भूल कर उसी सुख की कामना तथा उसे प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। अंत में जब यह समझ में आता है कि हमने यह प्रयत्न बेकार किए, यह सब तो छूटा जा रहा है, तो हम इतने लेट हो चुके होते हैं कि अंत समय में अपना मोह छुड़ाना असंभव हो जाता है।

एक डॉक्टर अपनी विद्या तथा अभ्यास के कारण मृत्यु शैया पर पहुँचते-पहुँचते भी अपनी विद्या का लाभ अन्यों को दे सकता है। इसी प्रकार दूसरी मानसिक विद्याओं का भी है। ब्रह्मा विद्या का भी अभ्यास आपका इतना ही होना चाहिए जिससे आप मृत्यु के पहले से ही अनुराग में विराग को समझने में अभ्यस्त हों। ऐसे अभ्यास के होने पर आपको कभी दुःख अथवा अभाव में कष्ट अनुभव ना होगा। एक ऐसी मस्ती आपके जीवन में आएगी जिसका सुख आप अनुभव ही कर सकेंगे, कह नहीं सकेंगे। वह वाणी से परे की बात है। उसके लिए हमारे कोष में शब्द भी नहीं हैं। यह शांति स्थाई है। इसे पाकर कुछ और पाने की इच्छा ही नहीं रहती । इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं और इनके साथ-साथ शरीर तथा मन की अकारण भागदौड़ भी समाप्त हो जाती हैं।

जब जागे तभी सवेरा। आप शुभ कार्य आरंभ करने में कभी भी लेट नहीं होते। यदि आपको सद्गुरु मिल गए हैं तो आप बहुत बड़े भाग्यशाली हैं। उनकी सेवा

में तन-मन-धन से जुट जाइए। उनकी कृपा से आपको राम नाम मिलेगा जिससे आपकी सारी वासनाएं समाप्त होंगी तथा आप को चिर स्थाई शांति प्राप्त होगी। यदि आप सद्गुरु तक नहीं पहुंच पाए हैं तो तुरंत उन्हें खोजने की ठानिए तथा उन्हें पाकर ही चैन ल लीजिए जिससे आपका यह जीवन सफल हो जाए।

गुरु भगवान सबका भला करें।

3. दो दोस्त

(लघु कथा)

हमारे एक मित्र ने कभी सन् 1940-41 में एक कथा सुनाई थी। बड़ी शिक्षाप्रद है अतः हम आप सब के सम्मुख भी उसे रखना चाहते हैं। कथा इस प्रकार है –

परशिया (ईरान) में रहने वाले दो दोस्तों में कुछ अधिक ही घनिष्ठता थी। रहते तो अलग-अलग ही अपने परिवारों के साथ थे और काम भी अलग-अलग ही करते थे। परंतु इसके अतिरिक्त जो समय मिलता उस में अधिकतर साथ-साथ ही रहते और अपने घर बाहर की बातें आपस में पूर्ण विश्वास के साथ करते रहते थे। इन्हें आपस में मिले और थोड़ी बहुत बात किए बिना चैन नहीं मिलता था।

बातों-बातों में एक दिन कुछ ऐसा विषय आ गया कि सारे संसार के लोग तो न जाने क्या-क्या कहते हैं और धार्मिक पुस्तकों में भी इस विषय में बहुत कुछ लिखा है परंतु हम अपने संतोष के लिए यह वचन एक दूसरे को के प्रति करते हैं कि हम में से जो भी पहले खुदा के घर जाए तो वह अपने मित्र को आकर यह बतलाए कि मरने के बाद उसकी रूह (आत्मा) के साथ क्या-क्या और कैसा-कैसा व्यवहार होता है।

इस बात को भी कई वर्ष बीत गए यहां तक कि यह दोनों भी इसे भूल से गए। आगे चलकर वह समय भी आ ही गया जब इन में से एक दोस्त बीमार हुआ। इलाज, दवा-दारू, सेवा-सुश्रूषा, भागदौड़ भी हुई परंतु अंत में होना था वही हुआ और वह चला ही गया।

मित्र जो रह गया उसे बड़ा धक्का लगा। बहुत दिनों शोकाकुल रहे। दिन बीते मृतक कर्म (चालीसा) आदि भी हो गया और जैसा कि संसार में होता आया है अपने-अपने कार्यों में लग कर मित्र को भूल से गए।

एक रात्रि को उन्होंने स्वप्न में अपने उन मित्र को देखा तो बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे "भाई तुम कहां चले गए इतने दिनों में हम तो तुम से मिलने के लिए तरस रहे हैं ? कहो क्या हाल है ?"

मित्र बोले, "मुझे बड़ी परेशानी है, मुझसे मेरी एक पुरानी बात के लिए जवाब मांगा जा रहा है जो मुझसे नहीं बन पड़ता है इसलिए तुम से सलाह लेने आया हूँ। तुम मेरे पुराने दोस्त हो, तुम से अच्छी सलाह कौन दे सकता है ?"

पहला मित्र – "हां बतलाओ क्या परेशानी है ?"

मित्र बोले – "तुम्हें मालूम है कि मैं रोज नमाज पढ़ने मेरे मकान के सामने वाली मस्जिद में ही जाया करता था। एक शाम को जब मैं नमाज के लिए तैयार होकर निकल ही रहा था कि इतनी जोर से बारिश आई कि अपना बाहर निकला हुआ कदम भी मुझे वापस लेना पड़ा और मेरी नमाज़ क़ज़ा हो गई और मेरे मुंह से बेसाख्ता (अनायास) ही निकल पड़ा - 'या अल्लाह, क्या बेवक्त बारिश आई है ?'"

"अल्लाह मियां के दरबार में मुझसे यह पूछा जा रहा है कि तुम्हें वक्त बेवक्त देखने का क्या अख्तियार (अधिकार) था कि जो तुमने मेरे काम (अर्थात वर्षा करने) पर एतराज़ किया ? यह सारी मख़लूक़ (प्रजा) मेरी है। मैं चाहूँ जो इसे नेमत बख्शूँ (उपहार दूँ) चाहे गारत (नाश) कर दूँ। तुम एतराज करने वाले, दखल देने वाले कौन होते हो ?"

"खुदा के वास्ते मुझे बतलाओ कि मैं इसका क्या जवाब दूँ ? तुम मेरे दोस्त हो मुझे नेक सलाह दो।"

मित्र की इस परेशानी को सुन कर यह मित्र भी घबरा गए और घबराहट में आंख खुल गई।

कथा तो यहीं समाप्त होती है परंतु हमें विचार करना चाहिए कि क्या हम रात दिन भगवान के कार्यों में दोष निकाले बिना रहते हैं ?

छोटी-छोटी बातों पर हम भगवान के कामों को अपने संकुचित दृष्टिकोण से देखते हैं और उस पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट किए बिना नहीं रहते और कटु आलोचना करने से भी नहीं चूकते।

भक्तों को तो भक्ति मार्ग पर चलना चाहिए और सभी अच्छा बुरा भगवान की ओर से आया हुआ मान कर चुपचाप सहना, संतोष करना और भगवान (अथवा गुरुदेव) की मर्जी में ही प्रसन्न रहना और उनको धन्यवाद करना चाहिए।

गुरु भगवान सबका भला करें।

4. सद्गुरु की खोज

हमारे पहले लेख 'हमारा ध्येय" में यह सुझाव दिया था कि यदि आपके सद्गुरु मिल गए हैं तो तन, मन, धन से उनकी सेवा में जुट जाइए। यदि अभी सद्गुरु नहीं मिले हैं तो तुरंत ही उनकी खोज की ठानिए तथा उनको पा कर ही चैन लीजिए ।

जिन्हें सद्गुरु मिल गए हैं उनका सौभाग्य है। उन्हें चाहिए कि अपने आपको सद्गुरु के हवाले करके जैसा वह कहें, करते रहें, जैसे वह रखें रहते रहे। प्रत्यक्ष सामने हो तो दर्शन करते रहे। सामने ना हो तो उनका बताया हुआ ध्यान घट में करते रहे। गुरु मूर्ति का ध्यान गुरुजन बिरले को ही बताते हैं, अतः गुरु की स्थूल मूर्ति का या उनके चित्र का ध्यान नहीं करना चाहिए। किसी भी प्रकार सद्गुरु का प्रेम तथा कृपा प्राप्त करनी है। हम इस विषय मैं आगे कुछ विस्तार से लिखेंगे।

जिन्हें सद्गुरु नहीं मिले हैं उनकी स्थिति भिन्न है। गुरु की खोज में उन्हें समय लग सकता है। परंतु इस खोज का प्रयत्न निष्फल न होगा। यदि आप की लगन सच्ची है तो अवश्य तथा शीघ्र सद्गुरु मिलेंगे। सत्य तो यह है कि ईश्वर ही गुरु रूप में हमें मिलते हैं। इनकी खोज में यदि कोई एक कदम चलता है तो वह सौ कदम उसकी ओर आगे बढ़ते हैं।

वैसे तो सद्गुरु हमारे जैसे ही शरीर धारी होते हैं तथा हमारी ही तरह खाते, पीते, उठते, बैठते, सोते, जागते तथा अन्य सांसारिक व्यवहार करते हैं। परंतु उनके हर कर्म में ऐसा संतुलन होता है जो साधारण मनुष्य में नहीं होता। इस संतुलन के कारण उनमें हर समय स्थाई स्थायी शांति विराजती है और जो कोई भी कभी उन के समीप जाता है - इस स्थाई शांति के प्रभाव से संसार के क्लेशों से न्यूनाधिक शांति पा जाता है। यही उनकी एक मोटी पहचान हैं।

गुरु सदा परमार्थी होते हैं। स्वार्थ उन्हें छू तक नहीं पाता। अपने पास आने वालों से वह कोई धन सेवा आदि की कामना नहीं रखते। उन्हें भेंट नहीं

चाहिए। आपका हृदय यदि शुद्ध है और सच्चाई लिए हैं तो उन्हें और कुछ भी नहीं चाहिए। वह आपको ईश्वर का नाम आप ही बताएंगे। इतना ही नहीं इसके अभ्यास मे समय-समय पर आपकी सहायता करेंगे। यहां तक कि आपको परम पद की प्राप्ति भी करा देंगे।

गुरु शब्द का तात्पर्य उस व्यक्ति विशेष से है जो हमारे अंतर से अंधकार हटा कर प्रकाश का प्रवेश करें। हमें विद्या पढ़ाने वाले गुरु भी यही करते हैं। जो ज्ञान अथवा जानकारी हमें देते हैं वह प्रकाशपुंज है जिससे वे हमारी अविद्या रूपी अंधकार को दूर करते हैं। इसी प्रकार हमारे माता-पिता तथा अन्य बड़ों से हमें बराबर किसी न किसी प्रकार की विद्या प्राप्त होती है। यह सब गुरु श्रेणी में आते हैं। सांसारिक विद्या तथा कर्तव्य आदि की जानकारी देने वाले भी गुरु हैं तथा हमें निज के विषय में जानकारी देने वाले भी गुरु हैं परंतु यह निज आत्मा की जानकारी देने वाले एक उच्च प्रकार के गुरु हैं।

सद्गुरु इसी उच्च प्रकार के गुरु हैं जो साधारण बाह्य विद्या से नितांत भिन्न तथा ऊंचे हैं। गुरु तो इस विद्या के भी सरलता से मिल जाएंगे जो आपको थोड़ी बहुत नीच निज के विषय में जानकारी दे देंगे, थोड़ा अभ्यास (आंतरिक) भी करा देंगे। परंतु इनसे आपका कार्य पूरा न हो सकेगा। आप को पूर्ण स्थाई शांति चाहिये। जन्म-मरण (पुनर्जन्म) के बंधन से मुक्ति (मोक्ष) चाहिए यह तो सद्गुरु के पास ही मिलेगी। यदि शिष्य रूप में हमारा समर्पण पूर्ण है तो सद्गुरु हमें अवश्य ही इस भवसागर से पार उतार देंगे तथा स्थाई शांति के देश तक पहुंचा देंगे। हमें इससे अधिक क्या चाहिए ? यहां सद्गुरु का ही अधिकार क्षेत्र है अन्य किसी का नहीं। अतः हमें सद्गुरु की ही खोज करना है तथा उन्हीं की शरण में जाना चाहिए।

सद्गुरु की पहचान इसीलिए भी कठिन है कि वह अपने आप को संसार के लोगों में प्रगट नहीं करते। भक्त रूप में वे अपना जीवन साधारण व्यक्तियों जैसा व्यतीत करते हैं तथा ख्याति से सदा बचते हैं। अपनी ईश्वरीय शक्तियों का संसार में प्रदर्शन नहीं करते। यदि ऐसा करने लगें तो उन्हें तमाशा देखने वालों से ही अवकाश नहीं मिले। ईश्वर आराधना के लिए समय ही न मिले। अतः वे केवल

उन्हीं लोगों में अपना संपर्क रखते हैं जो उनके पास ईश्वर नाम के लिए आते हैं। अन्य सभी से उनका व्यवहार केवल वैसा रहता है जैसा सांसारिक व्यक्तियों से। परंतु जिसे सचमुच ही शांति की खोज है वह उन्हें ढूंढ लेगा , निराशा का कोई कारण नहीं।

जिन खोजा, तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौं बौरी ढूँढ़न गई, रही किनारे बैठ ॥

जिधर देखे उधर ही हमें अशांति दिख पड़ती है। सांसारिक सारे पदार्थ पा कर भी हमें संतोष नहीं मिलता, तथा हम अशांत रहते हैं। इनमें शांति है कहां जो हमें मिले। हमारी इच्छाएं ही हमारे दुःख का कारण है। हमारे विषयों के आदर्शों के अनुसार संग्रह में दुख तथा त्याग में शांति है। त्याग मन से होना चाहिए तब हम शांति सुख की ओर बढ़ेंगे। गुरुदेव हमारी सारी चेष्टाओं को इसी मानसिक त्याग की ओर ले जाते हैं तथा हमें शांति के देश में प्रवेश दिला देते हैं। यहां इच्छाओं से मुक्ति हो जाती है। यही स्थाई शांति ईश्वर प्राप्ति है जो कि सद्गुरु द्वारा हमें प्राप्त होती है।

सद्गुरु के बारे में यदि आप संत साहित्य देखें तो आपको इस मार्ग की जानकारी हो मिलेगी। इनमें परम संत कबीर साहब, परम संत नानक साहब का साहित्य आप को सरलता से सुलभ हो सकता है। राधा स्वामी सत्संग भी संत मत है। वहां भी मिलेगा। इन मतों के सद्गुरु अभ्यासी को सुरत शब्द मार्ग पर चलाते हैं। यह शब्द मार्ग क्या है ? लिख कर न तो इसकी व्याख्या की जा सकती है और यदि की भी जाए तो सर्वसाधारण की समझ में आने की नहीं। यह मार्ग तो अभ्यास से समझ में आता है, वह भी धीरे-धीरे। बिना गुरु की सहायता के यह समझा नहीं जा सकता। इसके अभ्यासी को पग-पग पर अपने गुरु की सहायता की आवश्यकता रहती है तथा बराबर मार्गदर्शन लेना पड़ता है। यहां तक कि गुरु पर पूर्ण रुप से आश्रित रहना पड़ता है।

थोड़ा सोचिए कि गुरु यानी (सद्गुरु) को ऐसी क्या पड़ी है जो पहले तो अपने लिए इस शिष्य इकट्ठे करें फिर उनकी देखभाल का भार अपने सिर पर लेवें। वे स्वयं ही भक्ति का स्वरूप है तथा अपने प्रियतम की याद में सदा प्रसन्न तथा

मस्त रहते हैं। किसी से उन्हें क्या लेना देना है ? उनकी एक ही इच्छा है कि प्रियतम का ध्यान तथा संपर्क न टूटने पावे। अन्य की न तो उन्हें इच्छा है और ना ही आवश्यकता।

हमारी गरज से ही हम उनके पास जाते हैं। वह दयालु अवश्य है। हमारी लगन देखते हैं तो अपना लेते हैं। जो झूठी लगन लेकर या परीक्षा लेने आते हैं उन्हें कह देते हैं कि "मैं तो कुछ नहीं जानता, ज्ञान तो पंडितों से पूछिए वही बता सकेंगे। " जो सच्ची लगन से आ जाते हैं उन्हें ईश्वर का नाम तथा उसे पाने का मार्ग बतलाते हैं और उनकी पूरी-पूरी संभाल भी करते हैं। यह सब इसलिए कि आप में चाह है। वैसे उन्हें आपके लिए यह करने में कोई निजी लाभ-हानि नहीं। परंतु आपकी भलाई के लिए वे सब कुछ करने को तैयार है। यही उनकी दया है।

ऐसे सत गुरुजनों के पास आपको भीड़-भाड़ नहीं मिलेगी। भीड़ को समझाने बुझाने के लिए उन्हें समय कहां ? वह इन उलझन में पड़ कर अपनी याद और मस्ती में क्यों अंतर आने देंगे। परंतु जो भी थोड़े लोग उनके पास आने वाले होंगे, उनके हृदयों में ईश्वर प्रेम तथा प्रकाश भरा होगा। शांति की मस्ती में चूर होंगे। वैसे बाहर के सारे कार्य सर्वसाधारण की भांति करेंगे, जिससे अपना तथा अपने परिवार की आवश्यकता पूरी हो। ऐसे लोगों को सांसारिक लोग अपने जैसा ही समझेंगे और समझते रहेंगे उन्हें इसमें कोई आपत्ति (परेशानी) नहीं है।

हमारे गुरुदेव से एक पंडित जी ने प्रश्न किया कि आप चोले से तो कायस्थ हैं - आप गुरु कैसे बनते हैं ? गुरु तो केवल ब्राह्मण ही हो सकता है। इसका उत्तर गुरुदेव ने इस प्रकार दिया, "कौन कहता है कि मैं गुरु हूँ ? मैं तो धोबी और मेहतर का काम करता हूं। जो सज्जन मेरे पास आते हैं उनकी सफाई भीतर-बाहर से करना मेरा काम है। इसलिए आप मुझे धोबी और मेहतर कहें तो बेहतर होगा। "

ये संत जिनका संपर्क परम शक्ति से (जिसे शिव कहिए, भगवान कहिए, आदिसृष्टा इत्यादि किसी भी नाम से पुकारिये) हो गया है, उनके पास आपको ऐसी शांति मिलेगी कि आप अपने सारे दुख दर्द उनके पास जाकर भूल जाएंगे। आपकी तबीयत उनके पास से उठने की नहीं होगी और फिर बार-बार उनके दर्शनों के लिए

तथा उनके पास बैठे रहने के लिए आपका मन करेगा। यह आकर्षण उनमें कहां से आया, सोचिए ? उनका संपर्क परम-शांति के भंडार से है - इसलिए शांति उनके पास साक्षात रुप से विराजमान रहती है। आपको भी मिल जाती है। संत सद्गुरु की यही पहचान है।

इनके संपर्क से आपको दीन और दुनिया दोनों मिलेंगे। परंतु यदि आपको केवल दुनिया की चाह है तो उनके पास जाने का क्यों कष्ट उठाते हैं ? क्यों उनकी खोज में परेशान रहते हैं ? वह सब तो आपको वैसे ही मिल जाएगा। हमारे गुरुदेव श्रीमान् चच्चा जी (परम संत मुंशी रघुबर दयाल जी) कहा करते थे, "सांसारिक सुखों के सारे सामान माता-पिता की सेवा से मिल जाते हैं। " समाज सेवा में हमें ख्याति तथा दीन दुखियों की सेवा से समृद्धि मिलती है। इससे अधिक हमें संसार में क्या चाहिए। परंतु यह बात भी ध्यान में रहना चाहिए कि ये सारी चीज़ें हमारे मन को शांति और संतोष नहीं दे सकती।

हमें जितना भी सांसारिक सुख भगवान देते हैं उससे अधिक की चाहना सदा ही बनी रहती है। समृद्धि के साथ-साथ अधिकाधिक की चाह बढ़ती रहती है। यही अशांति का मूल है आपने भी सुना होगा --

चाह गई, चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह ।
जिनको कछु न चाहिए, ते शाहन के शाह ॥

भली-भांति समझ लीजिए शांति और संतोष तभी मिलेगा जब चाह मिटेगी ।

पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार सभ्य वे हैं जिनकी आवश्यकताएं अधिक हैं। जो थोड़े से संतोष कर लेते हैं, वह असभ्य या कम सभ्य हैं। भारत का आदर्श यह नहीं है । इसलिए भारतवासी असभ्य कहे जाते रहे हैं । परंतु इन पाश्चात्य देशवासियों ने धीरे-धीरे तथा बहुत देर से यह समझ पाया कि वह अपने प्राकृतिक जीवन में शांति-संतोष से दूर चलते चले जा रहे हैं। हमारे देश के अधिकतर लोग उन्हीं पाश्चात्य देशों के आदर्शों पर चलकर अपने को सभ्य कहलाने योग्य बनाना

चाहते हैं। इस प्रकार वे सभी शांति और संतोष के जीवन से दूर होते जा रहे हैं।

महात्मा गांधी लंदन जाकर भी अपने खादी के कपड़ों में अर्धनग्न अवस्था में रहे और इसी वेश में सम्राट जॉर्ज पंचम से मिले। उन्होंने संसार को दिखा दिया कि वह किसी प्रकार भी नीचे दर्जे के पुरुष नहीं हैं। उनमें शांति संतोष अखंड रूप से विराजता था जो सम्राट और उनके देशवासियों के लिए असंभव था। आज भी महात्मा बिनोवा भावे उसी संस्कृति के प्रतीक हैं। क्या यह दोनों संत आपको असभ्य लगते हैं ?

हां, तो यदि आपको भी ऐसी शांति तथा संतोष की खोज है तो अपने जीवन को सरल बनाइए। सारी बनावट व दिखावे की वस्तुओं को त्याग दीजिए। अनावश्यक वस्तुओं को छोड़िए। सात्विक जीवन पर आ जाइए। आप अपने को पहले से अधिक सुखी पाएंगे। यदि आपको चिर शांति, अमर शांति और संतोष की इच्छा है तो संत सद्गुरु को ढूंढ निकालिए। उनकी शरण जाइए और अपना वांछित फल पाया पाइए।

हमें धन वैभव तथा संसार के सारे सुख चाहिए। इन्हें क्यों त्याग दें ? शांति न मिले न सही हमें तो इसी में आनंद है। यही धारणा आमतौर पर देखने में आती है। सौभाग्य से इनमें से कोई संसार के थपेड़े खाता-खाता दुखी हो जाता है तो कहीं उसे बुद्धि आती है और वह शांति की खोज करता है। इनमें से भी विरले ही शांति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

आप भी यदि मन की शांति चाहते हैं तो आज ही से उसकी खोज में जुट जाइए इससे अधिक नेक सलाह और क्या दे सकते हैं ?

गुरु भगवान सबका भला करें।

5. फ़रिश्ता

(लघु कथा)

अल्लाह मियां के फ़रिश्ते एक बार अल्लाह मियां से आज्ञा लेकर दुनियाँ की सैर को निकला तो लौट कर शिकायत की कि "हुजूर ! आप की दुनिया में कुछ गड़बड़ी दिखलाई दी और वह यह है कि फलां (अमुक) नगर में एक बड़े इबादत-गुज़ार (भजन प्रार्थना करने वाले) पाक-साफ नेक आपके नाम की तस्बीह (माला) हर समय फिरते रहते हैं, मगर बेचारे खाने के लिए भी दाने-दाने को मोहताज हैं, जबकि फलां (अमुक) रईस हरदम नाच रंग, गाना बजाना, शराब कबाब में अपने दोस्तों के साथ महफ़िलों में ही रहते हैं उन्हें आप इतना देते हैं कि सब तरह की फिजूलखर्ची, रुपयों की बरबादी करता रहता है।"

फरमाया – "भाई हो सकता है कहीं कोई गलती हो गई हो, तुम जरा फिर जाकर एक बार और देखो और गौर करो। फिर आकर जल्द बतलाओ की अब क्या करना चाहिए।"

फ़रिश्ता – "हुजूर ! मुझे क्या और किस तरह उनका इम्तिहान लेना चाहिए बराये मेहरबानी अभी बतलाएं।"

फरमाया – "तुम अपना तोअसफ़ (परिचय) दोगे तो तुम से वो यह पूछेंगे कि अल्लाह मियां क्या करते रहते हैं ? तो तुम यह जवाब देना कि उनका काम हम सब फ़रिश्ते ही कर लेते हैं वह खाली बैठे-बैठे सुई की नोक में से ऊँटों को निकालते रहते है।"

फ़रिश्ता पहले तो उन इबादत गुज़ार के घर गया तो यह बातें हुई -

फ़रिश्ता – "अस्सलाम वालेकुम।"

इबादत-गुज़ार - "वालेकुस्सलाम, आइए तशरीफ़ रखिए (विराजिये)

फरमाएं कहां से और कैसे आना हुआ ?"

फ़रिश्ता - "अल्लाह मियां का फ़रिश्ता हूँ। इधर आया था सोचा आप से नियाज़ हासिल करता (मिलता, भेंट करता) चलूँ।"

इबादत-गुज़ार – "आपका शुक्रिया (धन्यवाद) । आप तो हमारे अल्लाह मियां के पास ही रहते हैं, आप तो सब जानते होंगे बराते करम (कृपया) बतलावें कि अल्लाह मियां क्या किया करते हैं ?"

फ़रिश्ता – "अल्लाह मियां का सारा काम तो हम फ़रिश्ते ही कर लेते हैं - वह तो फुर्सत में बैठे-बैठे सुई की नोक में से ऊँटों को निकालते रहते है।"

इबादत-गुज़ार – "मियां लाहौलविलाकुव्वत ! आप क्या फ़रमा रहे हैं ? कहां का सुई नाक और कहां ऊँट ! यह कैसे मुमकिन (संभव) है ?"

कुछ और भी बातें हुई होंगी जिससे हमारे इस कथा का संबंध नहीं है। फिर यह फ़रिश्ता उन रईस साहब के यहां गया तो वहां वही नाच रंग की महफिल जोर-शोर से चल रही थी। रईस सामने उठ कर इनका खैर मुकदम (स्वागत) किया और अपने पास ही गद्दी पर बैठा लिया। जब महफिल खत्म हुई तो सब उठे। रईस साहब ने इनका हाथ और पकड़ा कहा, "पहले खाना तनावुल फ़रमाएं (भोजन करें) फिर फुर्सत से बात करेंगे।"

खाना भी साधारण न था । अनेक प्रकार के बढ़िया-बढ़िया षटरस, स्वादिष्ट भोजन सजा हुआ भोजन गृह इत्यादि । जब खाना खा कर फ़ारिग़ हुए (निबटे) तो फुर्सत से बात करने के लिए बैठे। परिचय के बाद इन रईस साहब का भी वही प्रश्न है और वही उत्तर मिला जो इन इबादत-गुज़ार साहब को मिला था। इस पर इन रईस साहब ने क्या फरमाया वह सुनिए -

"अल्लाह कार साजे आलम (संसार का रचने वाला) है। वह क्या नहीं कर सकता ? मियां, ऊंट क्या वह सारे जहान (सृष्टि) को सुई की नोक में से निकाल

सकता है।" और भी बात हुई होंगी जिससे हमारी कथा का संबंध नहीं है।

फ़रिश्ता अपने पहले वाले निर्णय का तो स्वयं ही पूर्ण रूप से उत्तर पा चूका था। जब वापस अल्लाह मियां के दरबार में पहुंचा तो हाथ जोड़ कर कहने लगा "या अल्लाह ! तेरा निजाम और इंसाफ (प्रबंध और न्याय) में कभी कहीं भी खामी (कमी) नहीं है। मैं कम अकल (तुच्छ बुद्धि) उसे क्या समझ सकता हूं ? मेरे सारे शकूक (संदेह) मिट गए। आप का लाख-लाख शुक्रिया मेरे अल्लाह। मुझे माफ फ़रमावें।"

भगवान पर पूर्ण विश्वास भक्तों के लिए आवश्यक है। परम संत कबीर के यह वचन हैं -

मोकूं कहां ढूँढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काशी कैलाश में।
ना तीरथ में, ना मूरत में, ना एकांत निवास में ।।1।।
ना में जप मैं ,ना मैं तप में, ना ही व्रत उपवास में।
ना में क्रिया कर्म में रहता, ना ही योग सन्यास में ।।2।।
ना ही प्राण में, ना ही पिंड में, ना ब्रह्मांड आकाश में।
ना मों भृकुटी भंवरगुफा में, ना श्वासन की श्वास में ।।3।।
खोजी होय तुरंत मिल जाऊं, पल भर की तलाश में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, मैं तो हूं विश्वास में ।।4।।

यदि हमारा गुरु भगवान में पूर्ण विश्वास है और साथ में उनकी याद भी हर समय बसी हुई है तो हमारा भविष्य बना बनाया उज्ज्वल है।

गुरु भगवान सबका भला करें।

6. समर्पण

पहले लेख “हमारा ध्येय” शीर्षक में हमने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य का क्या ध्येय होना चाहिए और क्यों होना चाहिए। गुरु क्या है और हमें उनकी आवश्यकता क्यों है ? जब गुरु की आवश्यकता को समझ लिया तो गुरु की खोज करना आवश्यक हो जाता है। यह कैसे करना चाहिए इस विषय में आप हमारे दूसरे लेख (4. सद्गुरु की खोज) में पाएंगे।

अब इस लेख में हम आपकी सेवा में कुछ सुझाव प्रस्तुत करना चाहते हैं जिससे गुरु मिल जाने पर आप उनसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सकें। यह सब इतना सरल नहीं है कि जितना लगता है। परंतु कितना भी कठिन हो हमें यदि इससे लाभ होता है तो हमें यह सब कुछ खो कर भी इस मार्ग को अपना लेना चाहिए। संसार का बड़े से बड़ा लाभ इस प्राप्ति के आगे तुच्छ है।

हम पहले भी लेखों में यह बतलाते आए हैं और फिर भी कहेंगे कि आधुनिक जीवन क्रम इतना कठिन हो गया है कि छोटे बड़े सभी मानसिक तनाव से पीड़ित हैं। जिन्हें हम छोटा कहते हैं वे कुछ कम पीड़ित हैं - जैसे कृषक वर्ग, मजदूर वर्ग। मध्यम वर्ग के इनसे कुछ अधिक दुखी और ऊपरी वर्ग वाले अत्यधिक दुखी हैं ।

साधारण हम समझते हैं जिनके पास रुपया है, आराम के सारे सामान हैं, धन हैं, मकान हैं, नौकर-चाकर भी हैं उन्हें क्या दुःख है। परंतु अधिकतर आप उनको इतना व्यस्त पाएंगे कि इन्हें अपना दैनिक उत्तरदायित्व निभाने में भी समयाभाव रहता है। फिर भी - यह नहीं हो पाया, वह नहीं हो पाया, यहां घाटा हो गया इत्यादि। यह सब मानसिक तनाव के कारण बने ही नहीं रहते वरन् उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं।

कोई भी अपना कार्य पूरा करने के लिए 24 घंटे की जगह 26 घंटे का दिन नहीं कर सकता। ना ही कभी तृष्णा का अंत होता है। जिनके पास थोड़ा है वह

अधिक चाहते हैं। अधिक वाले उससे अधिक चाहते हैं। अपने साथियों को अधिक सुखी समृद्ध देखकर अपने भाग्य को अथवा भगवान को भी दोष देने में नहीं चूकते। यह संतोष की चरम सीमा नहीं तो क्या है ?

विचारक हो या सुधारक हो, अध्यापक हो या विद्यार्थी हो, कृषक हो या व्यापारी हो, शिल्पी हो या शिल्प शाला के स्वामी हो सभी चाहते हैं कि उन्हें सांसारिक सुखों के साथ-साथ शांति भी मिले। शांति संतोष से ही मिलती है। संतोष कहीं भी नहीं मिलता, किसी भी भाव नहीं मिलता। तो फिर क्या करें ? कहां जाएं ? यह एक समस्या ऐसी बनी हुई है जो हल होने में नहीं आती।

आजकल के हमारे युवक जिन पर आधुनिक सभ्यता का पूरा रंग है, संतोष के नाम से चिढ़ते हैं। कहते हैं संतोष पिछड़ेपन की निशानी है। संतोष हो गया, तो हम आगे कैसे बढ़ेंगे ? अतः यह संतोष और उसका सुख हमें नहीं चाहिए। अधिकतर विद्यार्थी इसी रंग में मिलेंगे। क्या करें - उन्हें शिक्षा इस प्रकार की दी जाती है। उनके ये विचार उनके आगे के जीवन में भी बने रहते हैं। कभी कहीं दुनिया के थपेड़ों से दुखी परेशान हुए तो कुछ समझ में आता है, परंतु परेशानी निकल जाने पर फिर यही क्रम।

आप देखते हैं कि अपने आप को सभ्य कहने वाले पाश्चात्य देश के निवासियों को सांसारिक साधनों की किसी प्रकार की कमी नहीं है। फिर भी उन में मानसिक तनाव की मात्रा भारतीय अथवा अन्य कम विकसित देश के निवासियों से कहीं अधिक है। और यही कारण है कि इन धनिक देशों में सैकड़ों स्त्री-पुरुष शांति की खोज में भारत आते हैं। यहां आकर भी उन्हें सही-सही पथ प्रदर्शन मिलता है इनमें हमें तो बहुत बड़ा संदेह है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं शांति संतोष से मिलती है। संतोष त्याग से मिलता है। हमारी आवश्यकता जितनी कम होंगी उतनी ही परेशानी कम होगी। यहां तक कि हमें जो कुछ भगवान ने दिया है उसी पर संतोष कर लें और अधिकाधिक प्राप्ति अथवा संग्रह के मोह को त्यागें तो जितना त्याग होगा हमें शांति की उतनी ही मात्रा मिलेगी।

यह त्याग और संतोष की भावना आप अपने आप में स्वयं ही धीरे-धीरे अभ्यास करके जागृत कर सकते हैं। इसमें थोड़ी बहुत सफलता तो सरलता से मिल जाती है। परंतु यह स्थाई होना कठिन है। यदि आप इस संतोष, शांति को स्थाई रूप से पाना चाहते हैं, तो आपको इसमें किसी महापुरुष की सहायता लेनी होगी। इन महापुरुष को ही हम गुरु या सद्गुरु कहते हैं।

सद्गुरु की खोज में आप को पूर्ण रुप से सतर्कता बरतनी है। यह सब हम अपने पहले वाले "सद्गुरु की खोज" में लिख आए हैं। यूं तो अपने आप को संत परम संत तथा गुरु सद्गुरु कहने वालों, लिखने वालों और इसकी छाया में भूले-भटके लोगों को ठगने वालों की कमी नहीं है। भगवाँ वेश में इस प्रकार के अधिकाधिक गुरु मिलेंगे। परंतु इनमें सही मार्ग के जानने वाले मिलना कठिन ही नहीं हमारी समझ में तो असंभव सा ही है। हाँ गृहस्थी में कहीं-कहीं छिपे हुए यह संत आपको मिल जाएं तो आपका बहुत बड़ा सौभाग्य है।

आपको यदि सद्गुरु की खोज में सफलता मिल गई तो समझिए कि आपके लंबे मार्ग का पथ प्रदर्शक मिल गया। अब आपको चाहिए कि इनके संपर्क का पूरा-पूरा लाभ जैसे-तैसे करके उठा लें। आपका जितना संपर्क तथा समर्पण अधिक होगा उतना ही अधिक आपको लाभ होगा। यदि समर्पण पूर्ण है तो काम भी पूरा है। समर्पण में जितनी कमी रहेगी उतना ही काम भी कच्चा रहेगा। परंतु संपर्क का लाभ तो मिलता ही रहेगा।

हमारे पूज्य गुरुदेव श्री मान चच्चा जी महाराज बतलाया करते थे कि यदि किसी शिष्य का किन्हीं कारणों से काम पूरा नहीं हो सका और उसे संसार से चला जाना पड़ा, साथ ही यदि उसका विश्वास गुरु में डिगा नहीं, तो गुरुदेव उसकी आत्मा को आगे के लोकों में भी यही गुरु बराबर सहायता देते हैं और अंततः उसको परम शांति का पद प्राप्त हो कर रहेगा। इसमें केवल अंतर यही है कि मनुष्य योनि में थोड़े समय में बहुत-बहुत काम हो सकता है, यहां तक कि सबसे ऊंचा आध्यात्म का पद तक प्राप्त हो सकता है और हो जाता है। शरीर के छूटने के बाद प्रगति बहुत धीमी होती है और दिनों का काम वर्षों में हो पाता है।

सद्गुरु अपने असली निजी रूप में ऊंची से ऊंची श्रेणी के भक्त होते हैं। यह अपने प्रीतम की याद से खाली तथा संपर्क से क्षण भर भी अलग नहीं होते। उन्हें आपसे कुछ भी नहीं चाहिए। परंतु यदि आप श्रद्धा, विश्वास लेकर उनके पास जाते हैं तो उनके पास जो ईश्वर का प्रेम है उससे आपके हृदय को भर देते हैं। संपर्क से आपका पात्र बनता रहता है और वह उसे ईश्वर प्रेम से भरते रहते हैं। यदि आप केवल दुनिया की इच्छाएं लेकर उनके पास जाते हैं तो भी आप को खाली हाथ ही लौटना पड़ेगा। वे यह भी दे सकते हैं, परंतु आप इस से दुनिया में और अधिक फंसेंगे, इस कारण से आप को नहीं देते। इसमें भी वह आपकी भलाई सोचते हैं। आप इसका अर्थ कुछ भी लगाए, आप को अधिकार है।

जो ईश्वर प्रेम जैसी अमूल्य वस्तु हमें दे सकते हैं उन से दुनिया के छोटे-मोटे लाभ मांगना ऐसा है जैसे किसी राज्य के राजाधिराज से एक पैसा मांगना। वह तो आपको राज्य भी दे सकता है। उससे एक पैसा मांगना उसका अपमान है। थोड़ा इस पर विचार कीजिए।

सद्गुरु दीन और दुनिया दोनों देते हैं, परंतु यह दोनों केवल उसी को मिलते हैं जो इच्छा रहित होकर उनके पास जाता है तथा उनके प्रेम के अतिरिक्त किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखता। ईश्वर अपने भक्तों को कभी दुखी नहीं देख सकता। सद्गुरु ईश्वर का स्थूल रूप है आप अपने आप को उनके समर्पण कीजिए। दीन और दुनिया दोनों मिलेगी।

जिन्हें सद्गुरु मिल गए हैं उन्हें समर्पण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करना है। समर्पण पूर्ण रूप से होना चाहिए। समर्पण के पश्चात आपको अपनी किसी भी संपत्ति तथा शरीर और मन पर भी अधिकार नहीं रहता। वह सब मन से गुरु का हो जाता है गुरु उस सब संपत्ति, शरीर और मन को स्वीकार तो कर लेते हैं परंतु फिर आप को लौटा भी देते हैं कि अब इस सब का अपना नहीं वरन मेरा (अर्थात गुरु का) समझ कर इस से काम लो। यदि समर्पण पूर्ण है तो काम भी पूरा है समर्पण में जितनी कमी रहेगी उतना ही काम भी कच्चा रहेगा। आप अपने को अनुचर (नौकर) समझो और स्वामी की वस्तुओं की जैसी भी अच्छी से अच्छी सुरक्षा आप कर

सकते हो, करो। जैसा भी अच्छा से अच्छा कार्य इसके द्वारा कर सकते हो करो क्योंकि आपका इसमें स्वामित्व का भाव नहीं। इसके कर्मफल आपको नहीं भोगने पड़ेंगे। गीता में भगवान कृष्ण ने निष्काम कर्म का जो उपदेश दिया है वह निष्काम कर्म यही है।

कोई भी सेठ अपने मुनीम को एक प्रकार से पूरे-पूरे अधिकार दे देता है। परंतु मुनीम के कार्य से जो लाभ हानि होती है वह सेठ की होती है। मुनीम का वेतन तथा सेठ जो प्रसन्न होकर दे देवें, वही मुनीम का भाग होता है। सब बाहर के लोगों को मुनीम ही सब अधिकारों को काम में लेते दिखते हैं और यह भली भांति समझते हैं कि मुनीम ही कर्ता धर्ता है। परंतु उस दुकान-संपत्ति में उसकी लिप्तता केवल मुनीम जितनी तथा सेठ का लाभ हो यह प्रवृत्ति लिए हुए होती है।

यह सेठ और मुनीम वाली भावना यदि आप अपनी बना सके तो कितनी सुंदर बात है। हम इसी भावना को एक और उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं। एक मजदूर आप से एक रुपया लेकर आपका सामान आपके चाहे स्थान पर पहुंचा देता है। उसकी दृष्टि अपनी मजदूरी एक रुपए पर रहती है पर आपके सामान में कोई स्वामित्व की भावना नहीं रहती। आपके सामान में स्वर्ण मुद्राएं हो या घास फूस हो, उसे इससे कोई प्रयोजन नहीं। उसका काम तो उसे ढोना मात्र है। यदि हम भी सब कार्यों को अपने गुरु का अथवा ईश्वर का मान कर करें तो उसमें हमारी स्वार्थ भावना न होगी। इसी कारण उसके लाभ हानि का भार हम पर ना होकर उसी के असल मालिक पर होगा। इसी को निष्काम कर्म कहते हैं। कर्ता को इसका पाप पुण्य कुछ भी नहीं मिलता। गीता का ज्ञान स्पष्ट रूप से यही है।

हम रात दिन देखते हैं कि लोग बड़ी-बड़ी संपत्ति कमाते हैं, इकट्ठी करते हैं, बहुत प्रसन्न भी होते हैं। परंतु अंत में सब कुछ यहां छोड़ कर चले जाते हैं। उनके साथ उनकी संपत्ति में से कुछ भी नहीं जाता फिर भी लोग सारी संपत्ति को अपनी कहते और समझते हैं, समझ का फेर है। संपत्ति जितनी अधिक, अशांति भी उतनी ही अधिक। यदि शांति चाहते हैं तो सद्गुरु की शरण में आइये और समर्पण कर के जीवन मुक्त हो जाइए अन्यथा यह दुनिया और इसका यही चक्कर यूं ही

चलता रहेगा।

यह चमन यूं ही रहेगा और हजारों बुलबुलें ।
अपनी-अपनी बोलियाँ सब बोल कर उड़ जाएंगे ॥

यह मुनीम या मजदूर की भावना यदि हमारी भी बन सके तो हमारा कल्याण हो सकता है। समर्पण में हमें स्वामित्व या यों कहिए अपनेपन का, मेरा तेरा का भाव त्यागना पड़ता है। जो वस्तुएँ हमें छोड़नी पड़ती हैं उन्हें यदि हम अपना समझना बंद कर दें, तो हमें उसके छूटने का दुख नहीं होगा। गुरुमुख मनुष्य को यही करना चाहिए। इसी से उनका पूर्ण कल्याण हो सकता है। यह सब गुरुदेव के सहारे से बड़ी सरलता से हो जाता है। वैसे बहुत ही कठिन है, यहां तक कि असंभव ही है।

इस समर्पण की भावना को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। समझकर अभ्यास में लाना तथा गुरु की सहायता लेकर परिपक्व करना चाहिए।

महात्मा तुलसीदास जी का यह भजन हमें स्पष्ट रुप से शिक्षा देता है -

मन पछितै है अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाई हरिपद भजु, कर्म वचन अरु हीते ॥ मन० ॥
सहसबाहु दशबदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
हम हम कर धन धाम संवारे, अंत चले उठ रीते ॥ मन० ॥
सुत वनितादि जानी स्वारथ रत, ना कर नेह इन्ही ते।
अंतहु तोहि तजेंगे पाकर, तू न तजे अब ही ते ॥ मन० ॥
अब नाथहु अनुराग जागु जड़, त्याग दुराशा जीते ।
बुझे न काम अगिनि तुलसी, बहु विषय भोग अरु घी ते ॥ मन० ॥

अपना सर्वस्व ऐसी जगह अर्पण कीजिए जहां आपको पूर्ण विश्वास हो जाए कि यह सद्गुरु शब्द मार्ग को जानते ही नहीं वरन उसके अधिष्ठाता है। हम "सद्गुरु की खोज" में यह सब लिख चुके हैं। अतः यहां इस विषय में विस्तार से पुनः लिखना आवश्यक नहीं है। फिर भी हम इतनी चेतावनी तो देना ही चाहते हैं कि

जहां भी आपको ऐसा लगे कि आप की संपत्ति का हरण होता है और आप को शांति तनिक भी नहीं मिलती तो समझ लेना चाहिए कि यहां धोखा मात्र है। रुपया कमाने का धंधा है। ऐसे स्थान से अपना संपर्क यथाशक्ति शीघ्र ही तोड़ लेना चाहिए।

परम पूज्य श्रीमान् चच्चा जी महाराज का कथन है कि --

शिष्य को ऐसा चाहिए, सब कुछ गुरु को देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, शिष्य से कुछ न लेय॥

हम पहले कह आए हैं कि गुरु को आपका शुद्ध मन यदि मिल जाए तो वह उसमें सरलता से 'रामनाम" को बिठला देंगे, आपका मार्ग खुल जाएगा। उन्हें इसके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए। सांसारिक संपत्ति की उनकी आंखों में कोई मूल्य एवं महत्व है ही नहीं। वह क्यों आपकी संपत्ति की ओर दृष्टि डालेंगे।

हमारे इन तीनों लेखों को यदि पाठकगण पढ़ेंगे तो उन्हें कुछ बातें इन में अवश्य ही ऐसी मिलेंगी जिनसे उनका पथ प्रदर्शन सही रुप से हो सके। हमारे एक अन्य लेखमाला "यादें" भी पहले पत्रिका में प्रकाशित हुई फिर उन्हें पुस्तक रूप में दे दिया गया। उनमें आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार हम अपने गुरुदेव से संपर्क बना सकते हैं और उसमें स्थायित्व ला सकते हैं। ये सब हमारे आध्यात्मिक प्रगति को शीघ्रगामी बनाते हैं। हमारे पास कितना समय है हमें पता नहीं इसीलिए --

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलै (मृत्यु) होत है, फैर करेगो कब॥

गुरु भगवान सबका भला करें।

7. संत रविदास

आपने संत रविदास का नाम तो सुना होगा। ये संत कबीर के समय से पहले से चले आ रहे हैं बहुत बड़े संत थे। अपने समय के यह बहुत ऊँचे संत हुए हैं। इनकी साखियाँ जो मिलती हैं उनसे उनकी महानता का पता चलता है। इनकी 603वीं जयंती तारीख 10-2-80 को भारत में कई स्थानों पर मनाई गई। उनकी एक कथा इस प्रकार है -

एक पंडित जी कार्तिक स्नान के लिए गंगा जी चले जा रहे थे। रास्ते में उनका जूता कुछ टूट गया। सहयोग वश उन्हें संत रविदास बैठे दीख पड़े। ये जूतों की मरम्मत आदि करने करके अपना निर्वाह करते थे। जाति के वह चमार थे ही, अपने वंश का कार्य करना श्रेष्ठ समझा। ऐसा ही उनके समय में नियम भी था कि लोग अपना पैत्रिक व्यवसाय ही किया करते थे।

जूते के ठीक करने में जो समय लगा उसी में पंडित जी से बात भी चल पड़ी। पंडित जी ने बतलाया कि वह गंगा स्नान को जा रहे हैं। संत जी बोले, "पंडित जी, हमारी भेंट भी लेते जाओ, हमारी तरफ से श्री गंगा जी को अर्पण कर देना।" पंडित जr के स्वीकार करने पर वे उठे और एक पुड़िया में थोड़े चावल लाकर पंडित जी को दे दिये। पंडित जी ने वह पुड़िया अपनी पगड़ी में खोंस ली और चल दिए।

पंडित जी के किसी यजमान का काम होता तो याद रहती क्योंकि यजमानों से यथेष्ट प्राप्ति होती है। रविदास जी से उन्हें क्या मिलना था ? सौभाग्यवश स्नान आदि से निवृत्त होकर पगड़ी सिर पर रखने लगे उस समय पुड़िया निकल पड़ी। पंडित जी को याद आ गई। सोचा, चलो यह काम भी करते चलें। फिर गंगा तट पर गए और चावल गंगा जी में डालते समय बोले, "ये आपके भक्त रविदास नें भेजे हैं।"

पानी में से आवाज आई "पंडित जी ठहरो" और साथ ही एक गौर वर्ण स्त्री का हाथ जल में से ऊपर आया। उसमें हीरे पन्ने जड़ा एक स्वर्ण का कंगन था। आवाज आई "ये भेंट हमारी ओर से संत रविदास को देना।" पंडित जी ने कंगन ले लिया और उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी नियत बिगड़ गई और लौटते समय में रविदास के ग्राम से दूर होकर ही निकल गए कि कहीं वे मिल जाएं और पूछ लें तो संभव है कंगन भी उन्हें देना पड़े।

पंडित जी ने घर पहुंचकर कंगन अपनी धर्म पत्नी को दिखाया तो वह इतनी सुंदर और मूल्यवान आभूषण को देखकर आश्चर्यचकित रह गई। कंगन तो उसने रख लिया परंतु वह उसे कब पहने कैसे पहने। उसकी समझ में नहीं आया।

पंडित जी कोई धनाढ्य तो थे नहीं। अन्य ब्राह्मणों की तरह वे साधारण स्थिति के थे। कुछ खर्च की तंगी से उन्होंने निश्चय किया कि इसे बेच दिया जाए तो पर्याप्त द्रव्य मिल जाएगा। पंडित जी को डर भी लग रहा था, परंतु परिस्थितिवश उस अमूल्य आभूषण को लेकर बाजार गए सुनारों और जौहरियों ने जब इस आभूषण की परख की तो बहुत मूल्यवान पाया। उन्हें संदेह हुआ की चोरी का ही हो सकता है। सूचना वहां के राजा को पहुंची तो राजा ने आभूषणों को मंगा कर देखा। रानी को दिखलाया। रानी ने उसे अपने लिए लेने का प्रस्ताव किया और साथ ही यह भी कहा ऐसे आभूषण सदा ही जोड़े से बनते हैं। इसका दूसरा कंगन अवश्य होगा। राजा ने कहा कि इस दूसरे कंगन को भी तुरंत मंगावें।

राजा ने पंडित जी को बुलाकर कहा कि इसके साथ का दूसरा कंगन लावें है अन्यथा उनको परिवार सहित मृत्यु दंड दिया जाएगा। पंडित जी के अनुनय-विनय करने पर उन्हें पन्द्रह दिन की मोहलत दी।

पंडित जी दौड़े और संत रविदास के पास पहुँचे और अपनी करुण कथा सुनाई। संत सदा से ही दयालु होते हैं। पंडित जी पर उन्हें दया आई और उन्हें सांत्वना देते हुए अपने पास बिठा लिया और कहा, भगवान का स्मरण करो, उनकी दया हुई तो सब ठीक काम हो जाएगा। जिस कुंडी में वह जूता पानी में डालकर भिगोया करते थे उसे एक कपड़े से ढक दिया और पंडित जी से बातें करते रहे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने हाथ डालकर उसी कुंडी में से एक वैसा ही कंगन निकाल कर पंडित जी को दे दिया। पंडित जी इन संत के इस चमत्कार को देखकर दंग रह गए और फिर आभूषण ले जाकर राजा को दिया, अपनी वह अपने परिवार की जान बचाई और राज्य से पर्याप्त धन पाकर सुखी जीवन व्यतीत किया।

प्रकृति की सारी शक्तियाँ भगवान के भक्तों की आज्ञा पालन करने में अपना गौरव अनुभव करती हैं। परंतु भक्त अपने भगवान के अतिरिक्त कुछ चाहते ही नहीं। उन्हें कोई इच्छा ही नहीं रहती। अपने भगवान की याद में सदा-सर्वदा मस्त तथा खोए हुए रहते हैं। दीन दुःखी कोई उनसे सहायता चाहता है तो दयालु होने के कारण उसका भला अवश्य कर देते हैं।

संत रविदास स्वयं का जीवन यापन जूते गांठ कर ही करते थे। जितना भगवान भेज देते उसी में संतोष कर लेते थे। परंतु पंडित जी का कष्ट मिटाने के लिए लाखों रुपए के मूल्य का कंगन मंगा कर प्रस्तुत कर दिया।

भक्तों की दयार्द्रता तथा महत्ता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

गुरु भगवान सबका भला करें।

8. चेतावनी

मुझे कई वर्षों से यह ध्यान बराबर आता रहा है कि मेरे बच्चों ने आध्यात्मिक मार्ग सही रूप में नहीं अपनाया । इसमें मुझे कुछ अपना दोष भी दिखता है । मैं अपने जीवन को ऐसा बनाना चाहता रहा हूँ कि जिस का प्रभाव मेरे पास रहने वालों तथा बच्चों पर पड़े । परंतु संभवतः मुझे इसमें सफलता नहीं मिली । मेरा प्रयत्न मेरे भारी भावी जीवन में भी यही रहेगा कि मैं अपना ही दृष्टांत इन सबके सामने रख सकूं । संभव है यह सब देख कर ही इन सब की समझ में आए कि मनुष्य जीवन का यह एक अत्यंत आवश्यक अंग है ।

मुझे याद है कि सन् 1926 में जब मैं विद्यार्थी जीवन में गुरुदेव श्रीमान् पूज्य चच्चा जी महाराज (परम संत महात्मा रघुबर दयाल जी महाराज) की सेवा में कानपुर नगर में रहता था, उस समय गुरुदेव के एक निकट के संबंधी उनसे कहा करते थे कि "हम को भी गुरु बना दो" तो चच्चा जी महाराज इस पर केवल मुस्करा देते थे । इन्हीं सज्जन को लगभग 35 वर्ष के बाद जब हमारे गुरुदेव को शरीर छोड़े 12-14 वर्ष हो चुके थे अध्यात्म विद्या के लिए लालायित ही नहीं एक प्रकार से तड़पते देखा । उस समय हमारे गुरुदेव (परम संत महात्मा रामचंद्र जी महाराज तथा श्रीमान् चच्चा जी महाराज) के कई योग्य अधिकार प्राप्त शिष्य, प्रचार के कार्य में रत थे । इन सज्जन ने आयु में बड़े होने के नाते दोनों सद्गुरु श्रीमान् लालाजी महाराज तथा श्रीमान् चच्चा जी महाराज का समय देखा था तथा इन सब प्रचार कर्ताओं के लगभग सारे जीवन से परिचित थे । इस कारण इनमें से कोई भी उन्हें इस योग्य न लगता था कि जो उन्हें मार्गदर्शन दे सके ।

इन सज्जन ने मुझे कुछ ऐसा अपने जीवन के अमूल्य क्षणों का वर्णन सुनाया कि जब उनका श्रीमान् लाला जी महाराज से सत्संग हुआ और उन्हें अलौकिक शांति का अनुभव हुआ । इसी प्रकार उन्हें कई बार श्रीमान् चच्चाजी महाराज के साथ भी अनुभव हुए । परंतु इन सब बातों को उस समय उन्होंने अधिक महत्व नहीं दिया । यदि उस समय ही उन्हें इसकी महत्ता पर्याप्त रुप से समझ में आ जाती तो उन्हें पीछे पछताने का कोई कारण ही नहीं रह जाता । उनके लिए

अध्यात्म का भंडार खुला पड़ा था। व् देना चाहते थे, परन्तु यह लेने में रुचि नहीं रखते थे। परंतु गुरुजनों ने उन में ऐसे संस्कार बीज रुप में अवश्य डाल दिए जो कई वर्षों के बाद इस रूप में फूट पड़े। गुरुदेव की कृपा हुई तथा उन्हें मार्गदर्शन मिला - उनका काम बन गया।

इस दृष्टांत के यहां उल्लेख करने का अभिप्राय है कि हमें अध्यात्म विद्या जो कि आज के युग में कठिन ही नहीं अपितु दुर्लभ भी है, यदि सरलता से मिलने के साधन प्राप्य हो तो चुकना नहीं चाहिए। शीघ्र अति शीघ्र किसी प्रकार भी लग लिपट कर इसे प्राप्त कर ही लेना चाहिए। जो सुविधा हमें आज मिल रही है कल को वह प्राप्त हो सके या नहीं, अथवा कितना प्रयत्न करना पड़े कुछ कहा नहीं जा सकता।

मनुष्य की प्रकृति है कि वह जिस वस्तु को अपने लिए आवश्यक समझता है प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। हमारा और हमारे समाज का (और घर का भी) वातावरण ऐसा है कि जिसमें हमारे बच्चों का ध्यान इस आध्यात्म की ओर आकर्षित करना आवश्यक नहीं समझा जाता। लिखना पढ़ना तथा अपने को इस योग्य बनाना की कोई अच्छी नौकरी या व्यवसाय करने योग्य हो जाएं जिससे अपने परिवार का भरण पोषण कर सकें - इतना ही आवश्यक समझा जाता है और सारी शक्ति इसी की तैयारी में व्यय कर दी जाती है। फिर व्यवसाय में पड़ने के साथ गृहस्थ धर्म में प्रवृत्ति होती है तथा बच्चों का पालन-पोषण इन दोनों से न तो समय ही बचता है ना कभी अपने बारे में सोचने का ध्यान आता है। साधारणतः इसी को जीवन का अंतिम ध्येय समझकर प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन इसी में लगा देता है और समय आने पर यह सब यहीं छोड़ कर चला भी जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में न्यूनाधिक ऐसे भी क्षण आते हैं जब उसे सांसारिक साधन उपलब्ध होते हुए भी मजबूरियाँ दिखाई पड़ती हैं। ऐसे क्षणों में वह शांत हो जाता है तथा उसे किस प्रकार कहां शांति मिले - इसके लिए विह्वल हो उठता है। इन क्षणों में यदि उसने निश्चय ही कर लिया तो वह शांति के मार्ग की खोज करता है। परंतु बहुधा मनुष्य उस परिस्थिति के बदल जाने पर अपने निश्चय

को भुला देता है और फिर उसी चक्र में पड़ जाता है। ऐसे व्यक्ति को चेतावनी के रूप में बार-बार इस प्रकार के कष्ट जीवन में आते हैं। कभी शुभ संस्कारों के वश अथवा बुद्धि स्थिर होने से - वह चेत जाता है तो फिर शांति की खोज में निकल पड़ता है। सच्ची लगन हुई तो "जिन खोजा तिन पाइयाँ" के अनुसार उसे गुरु मिल जाते हैं और उसका कल्याण हो जाता है।

यों तो इस सृष्टि के प्राणी मात्र ,जड़-चेतन सभी सृष्टा के आदेशों और इच्छा के तथा उसके बनाए नियमों के आधार पर चलते रहते हैं, परंतु मनुष्य योनि में आकर प्रत्येक जीवात्मा को एक ऐसा अवसर प्राप्त होता है कि यदि वह चाहे तो अपना कल्याण कर सकता है, जरा मृत्यु अर्थात पुनः-पुनः जन्म लेने और मरने के कष्ट से सदा के लिए अपने को सुरक्षित कर सकता है। यदि मनुष्य जन्म पाकर भी उसने अपना उद्धार न किया तो फिर लख चौरासी में लौट जाता है और न जाने कितने जन्मों के बाद पुनः उसे यह मनुष्य योनि मिल पाती है। अतः इस जन्म को ही स्वर्ण अवसर मान कर उसे भगवत् प्राप्ति में जुट जाना चाहिए। इससे उसे तुरंत ही शांति मिलना प्रारंभ हो जाती है और अंत में परम शांति के पद तक पहुंच जाता है।

कष्ट के भोक्ता को ही कष्ट का प्रकोप ठीक से जान पड़ता है, परंतु दूसरे लोग उसे देख कर भले ही यथार्थ अनुभव न कर सकें, अनुमान तो लगा ही सकते हैं, सोच भी सकते हैं, इतनी बुद्धि तो भगवान ने दी ही है। आगे चलकर यह कष्ट हमें भी हो सकता है यह भी समझ में आने की बात है। इस प्रकार के कष्टों में एक मृत्यु का कष्ट भी है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को भोगना पड़ता है, इससे वह बच नहीं सकता। संसार का सारा वैभव सारी शक्तियाँ तथा विद्या यहां निष्फल हो जाती है। परंतु हम इस कष्ट से बचने की बात कभी नहीं सोचते। कभी ध्यान भी आता है तो यत्न करके उसे शीघ्र निकाल फेंकते हैं क्योंकि उसे विचारने से भय लगता है। ऐसा करने से उस समय का भय भले ही दूर हो जाए परंतु वह समय तो आता ही है - अनिवार्य है। हमारे जन्म से पहले का इतिहास है कि बड़े-बड़े बलवान सब शक्तियों को जीतने वाले अंत में चले ही गए। हमारे सामने हमारे देखते-देखते लोग जा रहे हैं। एक हम हैं कि हम अपने आप को अमर समझ बैठे हैं।

इस अंत समय के कष्टों तथा संसार के सारे अन्य प्रकार के कष्टों से बचने का जो सरल उपाय है उसे क्यों नहीं अपना लेते ? हमें केवल अपने मन के झुकाव को एक मोड़ देना भर है। काम बना बनाया है। मगर यह मोड़ देना उतना सरल नहीं जितना कहने में लगता है। यह मन हमें अपनी राह पर चलाता है - हमारी राह कैसे चलेगा ? जैसे ओर विद्याओं के विद्वान शिक्षक उपलब्ध हैं ऐसे ही इसके भी हैं। आपको उनसे उनके पास जाना, उनके बताए साधनों अभ्यासों को अपनाना तथा उनके बताए मार्ग पर चलना होगा। इन महापुरुषों को ही हम "सद्गुरु" कहते हैं।

हमारे पास कितना समय है हमें मालूम नहीं। इस राह में हम कितनी प्रगति कर पाएंगे यह भी हमें पता नहीं। परंतु एक बार यदि राह पर आ जावें तो भटकाव तो बंद हुआ। अब चलना ही चलना है। सद्गुरु के सहारे से आप अवश्य ही शांति स्वरूप परमेश्वर को पा सकेंगे। जितन-जितने आप उनके कृपा पात्र बनते जाएंगे, उतनी-उतनी ही आपकी गति तेज होती जाएगी और आगे चलकर आपका काम बन जाएगा।

कष्टों से, विशेषकर मृत्यु कष्ट से, बचाना सद्गुरु के अधिकार क्षेत्र में है। मृत्यु के पश्चात आपको पुनर्जन्म के चक्र से छुड़ाना भी उन्हीं का अधिकार क्षेत्र है। परमपिता, आदी सृष्टा तक आपको पहुंचाना भी उन्हीं का कार्य है। फिर संसार के छोटे-मोटे कष्टों की तो गिनती ही क्या है ? यदि आपकी इच्छा हो तो आ जाइए तथा इस मार्ग को अपनाइए। अन्यथा भोगते रहिए संसार के नित्य-प्रति के कष्ट, जन्म-मरण तथा पुनः-पुनः लख-चौरासी के कष्ट। फिर कभी जब आपकी बारी मनुष्य जन्म की आएगी - तब देखा जाएगा।

पता नहीं हम कितनी बार मनुष्य योनि में आए और चुके। अब तो इन चूकों का अंत होना चाहिए --

"समय चूकि पुनि का पछताने, का वर्षा जब कृषि सुखाने।"

पहले भी बहुतों ने सोते हुए को जगाया है - चेतावनियाँ दी है। आपने भी पढ़ी होंगी - संभव है आपको मिली भी हो। जाग जावें तो आपका ही भला है। हम

तो यह सारा परिश्रम आपको चेताने का अपना कर्तव्य समझकर कर रहे हैं। मगर चेतना तो आपको ही पड़ेगा। आप यदि "खाओ, पिओ, मौज करो" के पक्के अनुयायी हो तो हमें हमारी धृष्टता के लिए कृपया क्षमा कर दीजिए। न करें तो भी आपकी मर्जी। हमने अपने विचार आप तक पहुंचा दिए। अपना भविष्य बनाना बिगाड़ना आपके ही हाथ में है। आप ही इसके लिए उत्तरदायी होंगे। हमारा कर्तव्य पूरा हो गया।

(नोट - मैंने यह लेख अपने बच्चों छोटे भाइयों आदि के लिए चेतावनी के रूप में लिखा था, परंतु कुछ मेरे मित्रों को यह लेख अच्छा लगा और उन्होंने इसे प्रकाशित करने का अनुरोध किया जिससे इस में आए सुझावों का लाभ अपने अन्य सत्संगियों को मिल सके। अतः इसे प्रकाशनार्थ भेजा गया है।)

गुरु भगवान सबका भला करें।

9. पंडित जी

लघु कथा

सन 1928 की बात है कि कानपुर में हम एक सुहावनी संध्या को कई पुराने नए सत्संग में आने वालों के साथ श्रीमान चच्चाजी महाराज (परम संत मुंशी रघुबर दयाल जी) के दरबार में बैठे थे। कुछ वार्तालाप कुछ ध्यान आदि का प्रोग्राम सदा की भांति चल रहा था कि एक नए से पंडित जी आ धमके।

अपनी आदत के अनुसार तिलक आदि देखकर चाचा जी महाराज ने फरमाया "पंडित जी पाय लागन।"

पंडित जी - "लाला, राम –राम।"

चच्चाजी --- "आसन लेव पंडित जी – बैठो।" पंडित जी चच्चाजी के पास ही तख्त पर बैठ गए। जबकि हम सब नीचे फर्श पर बैठे थे।

चच्चाजी -- "कहो, पंडितजी, कैसे आए।"

पंडितजी ----- "का बतामें लाला। ट्राम चलात हैं। (उन दिनों कानपुर नगर में ट्राम जमीन पर पतले रेलवे ट्रेक पर विद्युत द्वारा चला करती थी।) हुवन 60 रु० मिल जात हैं। छः घंटा ड्यूटी देन परत है। अकेले आदमी ठहरे आगे नाथ न पीछे पगा, खाली बैठे क्या करें। एक सेठ के घर तीन घंटा के लिए चले जात हैं। लाला, वह हमें 30 रु० महीना दे देते हैं। पढ़े भये तो हम हैं नांय, एक लाला के हियन कछु और काम मिल गयो है। दुई घंटा उलों लग जाता हैं। 20 रु० वे दे देते हैं। का करें लाला - आगे नाथ न पीछे पगा। थोड़ी समै एक पाठशाला में चले जात हैं, वहां कछु सफाई का काम मिल गऔ है लाला, 15 रु० दे देते हैं। गुजर हुई जात है। लाला का करें, अकेले आदमी - "आगे नाथ न पीछे पगा।"

चच्चाजी - (जरा धीरे से) : "किस कारण नाचे जे गधा।" कह कर चुप हो गए। पंडित जी अपनी बातों में इतने व्यस्त थे कि वे सुन भी नहीं पाए। मगर हम सब जो सुन रहे थे उनको ऐसी हंसी आई कि रुमाल मुंह में दे देकर बड़ी कठिनाई से हंसी को रोका। चच्चाजी महाराज नहीं हंसे, वैसे ही बैठे पंडित जी की बातें सुनते रहे।

पंडित जी - "हियन हमारे समधी रहत हैं उनके पास आए थे। उन्होंने बताओ कि लाला के हियन सत्संग होत हैं सो हमऊं आय गये कि दरसन करत चलें। बहुत देर हुई गई लाला अब जात हैं, काम को समै हैं।"

चच्चाजी जी महाराज ने चलते समय भी कहा "पंडित जी पालागन, फिर कभी आइयो, आपकी बातें बहुत अच्छी लगीं।"

मगर पंडित जी के जाने के बाद फरमाने लगे, अकेला आदमी है और हमें गिना गया 125 रु० महावर कमाता है फिर भी रोता है। उसकी बातें याद कर करके चच्चाजी महाराज और हम सब बड़ी देर तक हँसते रहे।

जिन्होनें चच्चाजी महाराज को देखा है और उनके पास बैठे हैं वे उनकी शिक्षा के तरिकों को जानते हैं। आंख बंद कर के सत्संग तो दिन में कभी-कभी ही होता था। मगर इस प्रकार हंसी की बातें हर समय होती रहती थी। इस तरह हंसी-ठहाकों के बीच यदि कोई व्यक्ति आंख बंद करके बैठ गया तो उसकी 15-20 मिनट की ऐसी समाधि लगी कि तन बदन का होश नहीं रहता।

उन दिनों उनका यह उपदेश तो कई बार सुना याद पड़ता है कि "हमारे पास रहो तो रहन सहन के तरीके सीखो, ब्रह्मा विद्या तो अपने आप मिलेगी।" हम अब भी यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि गुरुजनों के तरिकों को जितना जिसने अधिक अपने जीवन में उतारा उसे उतना ही आध्यात्मिक लाभ हुआ। उनके तरीके से उनकी याद पक्की होती है तथा याद करने से लाभ ऐसे प्रत्यक्ष हैं कि सत्संग में आने वाले सभी इन्हें भली भांति जानते हैं। हमारी पूजा की यही विशेषता है कि गुरु की याद ह्रदय में ऐसी जमा दी जाती है कि भुलाए नहीं भूलती। अभ्यासी की नियत सही

होनी चाहिए।

"उठत बैठत बिसरत ना, कबहूं ऐसी तारी लागी ।"

गुरु भगवान सबका भला करें।

10. निष्काम कर्म

महाकवि श्री राम भक्त शिरोमणि संत तुलसीदास के वचन रामायण में आए हैं -

कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा ॥

प्रकृति माता का यह ऐसा नियम है कि इसमें संदेह के लिए स्थान नहीं। शुभ कर्म का फल अच्छा और बुरे का बुरा होना स्वाभाविक ही है नहीं - आवश्यक भी है।

संसार में रहते हुए हम हर प्रकार की सुख समृद्धि की कामना करते रहते हैं। इसके लिए जप तप दान सेवा आदी भी करते हैं। यह सब क्यों ? इसलिए कि इन सब के बदले में हमें वांछित सुख-समृद्धि मिले। कर्म के नियम अनुसार यह मिलते भी है - कभी शीघ्र, कभी देर से, यहां तक कि आगे के जन्मों में भी, परंतु मिलते अवश्य है।

इसी प्रकार आप बुरे कर्म को लीजिए। इनका भी फल मिलना आवश्यक है। इसमें एक बहुत बड़ा अंतर यह है कि बुरे कर्म करने वाला व्यक्ति यह नहीं समझता कि मैं कोई बुरा काम कर रहा हूँ। कुछ समय पीछे भले ही उसकी समझ में आता हो कि मैंने अमुक कार्य बुरा किया। कभी-कभी उसे इसका पश्चाताप भी होता है। ऐसा भी होता है कि ऐसे व्यक्ति धीरे-धीरे बुरे कर्मों से बचने लगते हैं और उनके स्वभाव में सुधार हो जाता है। परंतु बुरे कर्मों का फल तो मिले बिना नहीं रहता - भले ही इतनी देर से मिले कि अगले जन्म हो जाएं।

इन दोनों अर्थात अच्छे और बुरे कर्मों के बीच के ऐसे कर्म भी हो सकते हैं जो न अच्छे में आते हैं और न बुरों में। हम इनको अपने लेख के लिए सामान्य कर्म कहना उचित समझते हैं। ऐसे कर्म सभी के जीवन में थोड़े बहुत होते रहते हैं परंतु बहुधा हम कभी इन पर ध्यान नहीं देते। हमारा उद्देश्य आपका ध्यान इन कर्मों की

और विशेषतः आकर्षित करना भी है।

इन तीन प्रकार के कर्मों में विभाजन की कोई भी रेखा निश्चित रूप से बनाना संभव न होगा। क्योंकि एक ही कर्म भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में इनमें से तीनों विभाजनों में से किसी में भी आ सकता है। हम इसका एक ही उदाहरण आपके सम्मुख रखना चाहेंगे। मदिरा को साधारण भाषा में दारू कहते हैं। जब हम किसी रोगी का समाचार पूछते हैं तो यह भी साथ में पूछ लेते ही कोई दवा दारू भी लेते हो ? इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि दारु भी दवा सा अर्थात औषधी है। रोगी के लिए इसका सेवन अच्छा इसीलिए है कि वह इसके द्वारा स्वस्थ होता है। जिसे हम "ब्रांडी" कहते हैं आयुर्वेद से उसका नाम "मृत संजीवनी सुरा" है। आवश्यक परिस्थितियों में इसका सेवन करना कराना अच्छे तथा स्वास्थ्यवर्धक कार्य में आता है।

अब इसी मदिरा का दूसरा रूप लीजिए। ठंडे देश के वासियों में यह प्रथा आपने भी सुनी होगी कि वह नित्य प्रति ही मदिरा का सेवन करते हैं। उनके लिए यह मदिरा उतनी ही आवश्यक है जितना भोजन क्योंकि वे इसके बिना अपना सामान्य जीवन बिताने में समर्थ नहीं है। इन परिस्थितियों में मदिरापान सामान्य कर्म में गिना जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्हें मदिरा अपने किसी काम के आनंद का साधन प्रतीत होता है तथा वे इसे अपने विशेष रुचि, शौक के लिए पीते हैं। उन व्यक्तियों का कहना है कि आपको आलू, चाय आदि की रुचि है तो मुझे मांस मदिरा की। इस में अंतर ही क्या है ? मुझे आप बुरा क्यों कहते हैं ? दलील तो सही लगती है। अब हम इस पर थोड़ा आगे विचार करें तथा इसका विश्लेषण करें तो संभव है किसी निष्कर्ष पर पहुँचे।

हम पहले कह चुके हैं कि मदिरा भी सामान्य भोजन होती है परंतु उन विशेष परिस्थितियों में जो ठंडे देशों में होती है। भारत जैसे गर्म देश में आलू, चाय आदि तो सामान्य भोजन हो सकते हैं परंतु मदिरा सामान्य नहीं है। इसका सेवन जो अधिक मात्रा में करके अपनी सुधि खो बैठते हैं वह अत्यंत ही बुरा है परंतु

इसका सामान्य सेवन भी अनावश्यक है। हमारे शरीर में यह थोड़े समय के लिए स्फूर्ति उत्पन्न करती है फिर इससे लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। इसकी आदत बन जाने पर हमें इसके पिए बिना चैन नहीं आता और हम इसके गुलाम हो जाते हैं। यही इसकी बुराई है।

किसी कवि की उक्ति है -

वो वादा पी जिसमें खुमार नहीं।
जो मस्त हुआ सरशार नहीं ॥

शराब वह पी जिससे खुमार-सुस्ती-ढीलापन न हो। जो मस्त हो गया अर्थात नशे में अपने आप को भुला बैठे वह सरशार नहीं हो सकता। सरशार का अभिप्राय है - जहां हर समय अमृत वर्षा होती रहे, न टूटने वाली कृपा की धारा सदा गिरती रहे। अपने प्रीतम की याद में सब कुछ, यहां तक कि अपने आप को भी भुला दें। नशे की मस्ती उतरने पर फिर खुमार स्वाभाविक है और सदा रहने वाली इस मस्ती में आनंद ही आनंद है। इसका स्वाद यदि एक बार भी मिल गया तो आप इसके लिए अपना समस्त भी न्योछावर करके इस की कामना करते रहेंगे।

संसार में रहते हुए हमें कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। यह कैसे हो कि हम बिना कुछ किए रह सकें। हाथ पैर से काम न करें तो विचार तो चलते ही रहेंगे और इस प्रकार कर्म होते रहेंगे। हम बिना कर्म के रह ही नहीं सकते और यह भी नहीं हो सकता कि हम अच्छे बुरे कोई भी कर्म न करके सभी सामान्य कर्म करते रहें। दुनियादार हम पक्के हैं। गुरुदेव की आज्ञा है कि दुनिया में रहो और ईश्वर को चाहो। तो फिर इस दुनियाँ और इस दुनियाँ के इतने बड़े सर्वव्यापी प्रपंच से बचने का भी कोई उपाय है ?

गुरुदेव के रूप में भगवान कृष्ण शिष्य रूप में भक्त शिरोमणि अर्जुन को उपदेश देते हैं--

सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकंशरणं ब्रज ।
अहं त्वाम् सर्व पापेभ्यों मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥

सर्व धर्मों (कर्तव्यों) को छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सारे पापों से छुड़ा दूंगा। इसमें सोच संदेह मत कर।

गुरु रुप में भगवान कृष्ण अपने प्रिय सखा भक्त शिरोमणि अर्जुन को समझा देते हैं कि तू अपने सारे कर्म (अच्छे बुरे) मेरे अर्पण करता जा। मेरे निमित्त ही कर्म कर उन्हें अपना कर्म समझ कर मत कर। ऐसा करने से उन कर्मों का फल तेरे पर नहीं लगेगा और तू स्वतः ही कर्म के बंधन से छूट कर मोक्ष का अधिकारी बन जाएगा। किसी भी प्रकार की कामना से रहित होकर कार्य करना यही निष्काम कर्म है और सारे बंधनों से छुड़ाने वाला है। हम भी यदि अपने सारे कर्म गुरुदेव को अर्पण कर दिया करें तो हम निष्काम हो सकते हैं।

जब हमारे न अच्छे कर्म रहेंगे न बुरे तो हमें कर्म का बंधन क्यों हुआ होगा ? जब हम अपने लिए कुछ भी कर्म नहीं करते और गुरुदेव की आज्ञा से उन्हीं के लिए करते हैं तो वह कर्म हमारे कैसे हुए ? हमारे करम नहीं तो बंधन भी नहीं। अब आपके लिए मुक्ति का द्वार खुल गया। मोक्ष जन्म मरण के बंधन से छूटने का नाम है। मुक्ति भी इसी को कहते हैं। हमारे आध्यात्म में मुक्ति के आगे भी कई-कई कक्ष हैं जिन्हें संतों ने अपनी-अपनी भाषा में सब को बतलाने का भी पूरा-पूरा प्रयास भी किया है। परंतु हम इस संसार में अपने आपको इतना सुखी तथा निश्चिंत पाते हैं कि --

अब तो आराम से गुज़रती है।
आक़बत की खबर खुदा जाने॥

खुदा जाने अर्थात न तो हमें मालूम है और ना ही हमारे जानने की इच्छा ही है। यदि ऐसा है तो यह लख चौरासी आप के स्वागत के लिए पाँवड़े बिछाए हुए हैं। फिर इस के चक्कर में जाइए। फिर कभी मनुष्य योनि मिले तब देखा जाएगा।

सकाम निष्काम कर्मों का चक्कर बड़ा ही कठिन है। विद्वानों के मतों में अंतर ही अंतर है। कोई इसका एक अर्थ लगाते हैं तो दूसरे दूसरा ही अर्थ कर देते हैं। हमने तो संतों के संपर्क से जो "निष्काम" का अर्थ समझा है उसे आपके सन्मुख

प्रस्तुत करके करने का प्रयास किया।

गुरु भगवान सबका भला करें।

11. परेशानियाँ

परेशानियों का ठिकाना नहीं है,
हमें काश इनको गिनाना नहीं है ।
सहेंगे जो किस्मत में लिखा हुआ है,
अब इनसे हमें घबराना नहीं है ।
कहां जाएंगे इनसे बच के हम आखिर,
हमें तो कहीं आना जाना नहीं है ।
तुम्हारे ही दर पर झुकाएंगे यह सिर,
किसी और को आजमाना नहीं है ।
बनाओ बिगाड़ो यह मर्जी तुम्हारी,
शिकायत किसी को सुनाना नहीं है ।
रहेंगे हम आखिर तुम्हारे ही होकर,
हमें और से दिल लगाना नहीं है ।
चले जाएं दर से तुम्हारे मगर हम,
कहीं दूसरा कुछ ठिकाना नहीं है ।
हमें अपने आगोश में आप ले लो,
ये ख्वाहिश किसी को बताना नहीं है ।
लिया अब सहारा है बस आपका ही,
इनायत का औ कारखाना नहीं है ।
परेशानियाँ खत्म हो जाए सारी,
महर औ करम किसने जाना नहीं है ।

गुरु भगवान सबका भला करें ।

12. स्वार्थ और परमार्थ

"स्वार्थ" का अर्थ संस्कृत भाषा के अनुसार अवसर (अपना) + अर्थ (मतलब) अर्थात "अपना मतलब" हुआ।

"परमार्थ" का अर्थ इसी प्रकार - परम यानी (उच्च, श्रेष्ठ) + अर्थ (मतलब) अर्थात "श्रेष्ठ तथा ऊंचा मतलब।"

शब्द "अर्थ" अर्थात "मतलब" दोनों ही में व्याप्त है। अतः दोनों के अर्थों में अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। परंतु हमारी भाषा में स्वार्थ का अर्थ अपने निजी लाभ से लिया जाता है भले ही उसमें दूसरे की हानि होती हो, और परमार्थ का मतलब किसी ऊंचे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयत्न से लिया जाता है।

हम इन शब्दों तथा उनके अन्वय करके अर्थ निकालने की बात को छोड़कर इन दोनों ही शब्दों के अंदर जो साधारण मनुष्यों की भावनाएं निहित है, वही अर्थ इनका मान कर आगे चलते हैं।

जो स्वार्थी होता है हम उसे कुछ निम्न श्रेणी का मान कर उसे आदर नहीं देते। कभी-कभी घृणा की दृष्टि से भी देखते हैं इसलिए कि वह अपने लाभ के लिए किसी का भी अहित करने पर उतारू रहता है। किसी अन्य को होने वाली हानि से उसे कोई संबंध नहीं, केवल अपना मतलब बनना चाहिए, ऐसी उसकी नियत रहती है। यहां तक की अपने थोड़े लाभ के लिए वह दूसरों को बड़ी से बड़ी हानि पहुंचाने के लिए भी तैयार रहता है।

भगवान की इस विचित्र सृष्टि में बहुत पहले से ऐसे मनुष्य होते आए हैं। इतिहास में अनेक उदाहरण इसके मिलते हैं। परंतु आजकल के युग में तो इनकी भरमार ही है। इसके विस्तार में जाना तो इसलिए आवश्यक नहीं है कि हम सभी बहुतेरे ऐसे लोगों को जानते हैं कि जो अपने स्वामी, जिसका कि वह नमक खाते हैं, उसको भी अपने स्वार्थ के लिए हानि पहुंचाने में नहीं चूकते। हमारे राज्याधिकारी,

राज्य कर्मचारी अपनी सरकार की कितनी भी हानि की चिंता न करके अपना मतलब बनाते हैं और मालामाल हो कर गर्व का अनुभव करते हैं। इन्हें चोरों की संज्ञा देना क्या उचित नहीं होगा ? परंतु हम देखते हैं कि उन्हें समाज में आदर ही मिलता है।

परमार्थ को लीजिए तो यह भी तो एक प्रकार का स्वार्थ ही है। हम पुण्य अर्जित करने के अभिप्राय से दान आदि करते हैं, दूसरों की सेवा करते हैं, कुआं, बावड़ी, मंदिर आदि बनवाते हैं। परंतु यह भी किसी न किसी उद्देश्य से करते हैं। अतः इसमें भी एक प्रकार से हमारा स्वार्थ ही निहित हैं। परंतु इस स्वार्थ में और पहले वर्णित स्वार्थ में एक बड़ा अंतर यह है कि इसमें किसी का भी अहित करने की भावना निहित नहीं होती और दूसरों को कुछ लाभ ही पहुँचाते हैं। इस कारण यह परमार्थ ऊंचा तथा श्रेष्ठ माना जाता है।

संसार में इस प्रकार के परमार्थ के काम करके सभी पुण्य के भागी होते हैं और आगे पीछे इन शुभ कर्मों का फल भोगते हैं। यही प्रकृति का नियम है। स्वार्थी लोगों को भी इस नियम के अनुसार दंड मिलना चाहिए। वह भी मिलता तो अवश्य ही है क्योंकि प्रकृति का नियम अटल है। परंतु कुछ उदाहरणों को छोड़कर हम उनके द्वारा हानि को, उन स्वार्थ के कार्यों से जोड़ नहीं पाते हैं। वह स्वयं भी जब दुःख पाते हैं तो उन्हें अपने कर्मों का दंड के रूप में न लेकर अपने ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार ही कह कर पुकारते हैं। यहां तक कि भगवान को भी दोष देने से नहीं चूकते कि हमें अकारण ही दुःख दे रहा है।

स्वार्थ के अनेक उदाहरण हमारे सामने प्रतिदिन आते रहते हैं। यह महामारी, अनावृष्टि, अकाल, बाढ़, तूफान, आतंक, युद्ध आदि भी तो हमारे ही कर्मों का फल है। इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा।

अब हम परमार्थ के विषय में कुछ विस्तार से अपने विचार आपके सन्मुख रखने का प्रयास करते हैं। जैसे की हम पीछे कह आए हैं, परमार्थ (परम अर्थ) हमारा ही मतलब है परंतु यह मतलब इन सांसारिक लाभ के लिए होना उससे होने वाले बड़े लाभ से वंचित रहना है। अच्छे बुरे दोनों ही कार्य (कर्म) हमारे बंधन का

कारण होते हैं तथा उनके भोग के लिए हमें बाँधते हैं। पुनर्जन्म का मुख्य कारण यही हमारे कर्म हैं। यदि हम किसी प्रकार इन सभी अच्छे-बुरे कर्मों के फल के प्रभाव से बच सकें तो हमारा यह बंधन भी समाप्त हो सकता है। तथा हम मोक्ष पद को प्राप्त हो सकते हैं जहां दुःख तो है ही नहीं, सुख भी है तो उच्च कोटि का की जिसका स्वाद भी हमें जीवन में नहीं मिल पाता। यह सब कैसे प्राप्त हो ? हमारे कार्य का बंधन कैसे छूटे ? यह एक बड़ी समस्या है। परम अर्थ यही होना चाहिए।

संसार के सारे ही धर्म हमें अच्छे कार्यों के लिए प्रेरित करते हैं तथा बुरे कर्मों से बचने के लिए उपदेश देते हैं। मार्ग बतलाते हैं और दृष्टांत देकर समझाते भी हैं - परंतु क्या यह सब पर्याप्त है ? हमें कर्म के बंधन से छुड़ा सकता है ? कदापि नहीं।

इसके लिए हमें अन्य मार्ग ही ढूंढना पड़ेगा। संतों के पास अवश्य ऐसे साधन है जो कर्म के बंधन से मुक्त करा सकते हैं। भगवान कृष्ण ने अपने भगवद् गीता में स्पष्ट उपदेश दिया है कि जो कर्म ईश्वर अर्पण हो जाते हैं वे निष्काम हैं। निष्काम का अर्थ है - जिसमें हमारी कामना, इच्छा, मतलब, आदि कुछ नहीं हो, जो हम अपने निजी लाभ के लिए न करते हो तथा उससे फल की भी कामना हमें ना हो। यह कार्य कितना कठिन है ? हम संसार में फँसे व्यक्तियों के लिए यह कहना कि संभव नहीं है, अतिशयोक्ति तो नहीं होगी। परंतु यह संभव अवश्य है।

महात्मा अर्जुन ने जब भगवान कृष्ण को गुरु रूप में धारण कर लिया तब यह निष्काम कर्म करना उनके लिए सरल हो गया। आपको भी यदि सद्गुरु की शरण मिल जाए तो आपके भी सारे कर्म निष्काम हो सकते हैं। इसके द्वारा अध्यात्म के सारे ऊंचे पदों को प्राप्त कर सकते हैं। हम जिसे परमार्थ कहते हैं वह इस अध्यात्म की ऊंची से ऊंची स्थिति को प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए हमें भी सद्गुरु की खोज कर उसकी शरण लेनी पड़ेगी तभी काम बन सकता है। इसकी प्राप्ति का और कोई साधन नहीं है यदि है तो वह सद्गुरु द्वारा ही मिल सकता है अन्यथा नहीं।

गुरु भगवान सबका भला करें।

13. भक्त और भगवान

(भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा)

महाभारत में कई भक्तों का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। भीष्म पितामह इन में से एक हैं।

युद्ध के पहले ही भगवान कृष्ण ने यह प्रण किया था कि मैं शस्त्र (हथियार) नहीं उठाऊँगा। जब भीष्म पितामह की सेना उनके सेनापतित्व में कई दिन लड़ती रही तब महाराज दुर्योधन ने एक रात्रि को अपने मामा तथा भाइयों सहित सबने पितामह को बहुत तंग किया कि आप हमारे सेनापति होते हुए युद्ध के समय पांडवों की रक्षा (रियायत) आदि करते हैं। पितामह पूरी निष्ठा के साथ कौरवों का पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे अतः उन्होंने इस आरोप का खंडन किया, परंतु वह कब मानते थे। लगे भगवान कृष्ण की बुराई करने - हमारी सेना तथा वीरों को इन्होंने मरवाया है, कहते हैं हम हथियार भी नहीं उठाएंगे फिर भी स्वयं हथियार न उठाकर हमारी सेना तथा योद्धाओं को मरवाता रहता है, आप इतना भी नहीं कर सकते कि उनसे शस्त्र (हथियार) ही उठवा देते इत्यादि।

पितामह भी क्रोध में आ गए और बोले -

आज जो मैं हरिहूं न शस्त्र गहावों।
तो लाजूँ गंगा जननी को, शांतनु सुत ना कहावों ॥ आज जो ॥
स्यंदन खंडू सारथी खंड, कपिध्वज सहित गिरावों ।
पाण्डव रथ सनमुख ह्वै धावों, सरिता रुधिर बहावों ॥ आज जो ॥
इतना न करूँ, शपथ मोहि हरि की, क्षत्रिय गति ही न पावों।
सूर श्याम रणभूमि विजय बिन, जियत न पीठ दिखावों ॥ आज जो ॥

कौरव भ्राता आदि मन में बहुत प्रसन्न हो गए कि अब युद्ध में हमारी विजय अवश्य ही है। जब युद्ध आरंभ हुआ तो निस्संदेह पितामह ने इतना भीषण युद्ध किया कि रक्षा के लिए भगवान कृष्ण को अर्जुन का रथ बीच में लाना पड़ा तथा

पितामह और अर्जुन का युद्ध हो चला। दोनों ही चोटी के योद्धा थे। युद्ध बहुत घमासान हुआ इतने में पितामह को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई और उन्होंने अर्जुन के रथ का एक पहिया काट दिया। सारथी के नाते भगवान कृष्ण ने उतर कर उस पहिए को लगाया परंतु ज्योंही वे पहिया लगाते पितामह उसे फिर खंडित कर देते। भगवान यह सब देख कर तंग आ गए और उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने वह पहिया हाथ में उठाया और बोले कि "यह अर्जुन से युद्ध करता है या मुझ से।" कहते-कहते वह पहिया उनकी उंगली पर नाच गया। चक्र सुदर्शन का रूप धारण करके वह पहिया विनाश की लीला प्रस्तुत करता इसके पहले ही अर्जुन रथ से कूदकर दौड़े और बाएं हाथ से भगवान की कमर पकड़ी और दाहिने हाथ से वह पहिये वाला हाथ और चिल्ला कर कहा, "भगवान आप ये क्या कर रहे हैं।"

उधर भीष्म पितामह ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी होने पर धनुष-बाण रख दिया और हाथ जोड़कर भगवान से आग्रह करने लगे कि "अवश्य मारो भगवन, यह पापी अपने पापों से मुक्त हो जाएगा आपका कोटि-कोटि स्वागत है।"

भगवान का क्रोध अर्जुन का वाक्य सुन कर तुरंत ही शांत हो गया। बोले, अर्जुन तुमने मुझे मेरी प्रतिज्ञा की याद दिला दी। नीचा सिर कर लिया तथा पहिया भी फेंक दिया।

कौरव दल में धन्य-धन्य की ध्वनि गूंज उठी। भीष्म पितामह की प्रशंसा होने लगी कि उन्होंने कृष्ण से हथियार उठा ही दिया। इतने पर पितामह ने आज का युद्ध समाप्त करने का शंख बजा दिया तथा युद्ध बंद हो गया।

सोचने का विषय है कि क्या पहिया सचमुच कोई शस्त्र था ? पितामह भी यह जानते थे परंतु सर्वसाधारण तो यही समझ पाए कि भगवान की प्रतिज्ञा भंग करा दी और शस्त्र उठवा दिया।

भक्तों की लाज रखना भगवान का यह एक अटल नियम हैं। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान न रखते हुए अपने भक्त श्रेष्ठ भीष्म पितामह के प्रण की रक्षा की। इस प्रकार भगवान की लीला के असंख्य उदाहरण हमारे इतिहास में मिलते हैं।

"हम भक्तन के भक्त हमारे। "यह भगवान कृष्ण के वचन हैं। हम सबको भी गुरु भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि हमें अपनी पावन भक्ति प्रदान करें जिससे हमारा कल्याण हो।

गुरु भगवान सबका भला करें।

14. स्थूल सूक्ष्म और कारण

भगवान की सृष्टि इन्हीं तीन में विभाजित है । श्री मद्भागवत पुराण के अनुसार जितना विस्तार स्थूल का हमें दृष्टिगोचर होता है अथवा जिसके विषय में मानव को जानकारी है उससे कई गुना विस्तार का सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से भी कई गुना विस्तार कारण जगत का है।

हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों ने इन तीनों की खोजबीन की। इस खोजबीन के लिए उनके पास क्या साधन उस समय उपलब्ध थे यह पता तो नहीं चल पाया है परंतु जो तथ्य उन्होंने जाने और आगे की पीढ़ियों के लिए उपलब्ध किए वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। संभवतः उन्होंने ध्यान योग अथवा दिव्य दृष्टि द्वारा इन तीनों ही सृष्टि के भागों का अन्वेषण किया और इन सब का ज्ञान प्राप्त करके हमारे लिए अंकित किया । उन्होंने तपोबल तथा बुद्धि बल से ज्योतिष जैसी अनुपम विद्या का अनुसंधान किया जिसका गणित आज भी उसी प्रकार सही दिशा में कार्य कर रहा है ।

महाभारत हमारे भारत का एक प्रामाणिक ग्रंथ है। उसके रचयिता भगवान वेदव्यास को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी और उसके द्वारा उन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य का पूरा ज्ञान था। इन्हीं भगवान वेदव्यास जी ने ही, महाराज धृतराष्ट्र को कौरव पांडव युद्ध का समाचार उनके महल में बैठे सुनाते रहने के लिए, महात्मा संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी।

इसी प्रकार उनके सूक्ष्म और कारण के सृष्टि अनुसंधान महत्वपूर्ण हैं और आज के युग में भी उतनी ही सही दिशा निर्देश कर रहे हैं।

आधुनिक मानव ने भी अपने बुद्धि बल से बड़े-बड़े साधन उपलब्ध किए और स्थूल जगत का गहरा अन्वेषण किया। हमारे सूर्य परिवार में पृथ्वी के समान नक्षत्रों के विषय में स्वतंत्र रूप से जानकारी प्राप्त करके हमने ज्योतिष शास्त्र को अक्षरशः सत्य पाया तथा उसकी पुष्टि की।

इनका अन्वेषण और भी आगे बढ़ा और हमारे सूर्य परिवार के अतिरिक्त न जाने कितने ही ऐसे सूर्य मंडल इसी ब्रह्मांड में खोज निकाले जो हम से बहुत-बहुत दूर आकाश में स्थित हैं और जिनका प्रकाश हम तक आने में वर्षों का समय लग जाता है। यह सब जान कर यदि हम इस स्थूल जगत का ही अनुमान लगाएं तो यह इतना बड़ा है किस की पूर्ण जानकारी करने में हम नितांत असमर्थ हैं।

जब स्थूल का ही विस्तार इतना बड़ा है कि जिसकी जानकारी हम नहीं कर पाते तो सूक्ष्म, जो इसका कई गुना बड़ा है, उसका हम क्या अनुमान लगा सकते हैं और क्या उसकी जानकारी कर सकते हैं ? फिर कारण तो सूक्ष्म से भी कई गुना बड़ा है - उसके विषय में क्या कहा जाए ? स्थूल के अनुसंधान के लिए तो साधन भी उपलब्ध है परंतु सूक्ष्म और कारण के लिए तो साधनों का भी अभाव है।

मानव बुद्धि तथा सामर्थ्य की तुच्छता तो यह है। फिर भी वह अपने आप को कितना बुद्धिमान सामर्थ्यवान समझता है ? विचार कीजिए कि यह सब कहां तक उचित है।

स्थूल-सूक्ष्म-कारण यह सब सृष्टि कर्ता की रचना मात्र है। वही इस सबका स्वामी, संचालन कर्ता तथा सर्वस्व है। उसी की शक्ति जिसे हम प्रकृति माता का आदरणीय नाम देते हैं इस सारी सृष्टि का पालन संचालन करती है।

सृष्टा द्वारा ही प्रकृति के नियमों की रचना हुई है जिसके अनुसार सृष्टि के सारे कार्य सुचारु रुप से चलते रहते हैं। मानव ने इन नियमों को जाना समझा और इसके अनुसार चलना भी सीखा है। जो व्यक्ति इन नियमों का उल्लंघन करता है उसे प्रकृति द्वारा दंड भी नियमानुसार मिलता रहता है।

मानव जीवन का इस स्थूल सूक्ष्म कारण से क्या संबंध है हम थोड़ा इस विषय पर विचार करें तो हमें अपनी तुच्छता का अनुमान लगा सकते हैं और विशाल सृष्टि में मानव क्या है और उसकी क्या सामर्थ्य है, इसे देखकर हमें कहना पड़ता है कि मानव को अपनी जानकारी पर गर्व करना नितांत भ्रामक है।

इस कारण के आगे भी महा कारण का क्षेत्र है। इसे प्राप्त करने पर ही मानव कर्ता तक पहुंचने में समर्थ हो सकता है। अधिकतर मानव तो स्थूल में ही फँसे रह जाते हैं और इसी में अपने जीवन समाप्त कर देते हैं। आगे की बात सोचने के लिए उन्हें समय और सुविधा नहीं है ना उत्सुकता ही है। क्या यह हमारी एक बड़ी भूल नहीं है ?

जन्म-जन्मांतर से हमारा जीवन क्रम तो कुछ ऐसा बनता चला आ रहा है कि हम क्या हैं ? कहां से आए हैं ? कहां जाना है ? साधारणतः इस विषय पर सोचते ही नहीं। हमारे बड़ों ने हमें कमाने खाने योग्य बनाने में ही हमारी सारी शक्ति सामर्थ्य व्यय की जिससे उन्हें तथा हमें सांसारिक जीवन को सुख सुविधा संपत्ति मिले और सभी प्रकार के सांसारिक सुखों का उपभोग कर सकें। इनके आगे की बात हमें नहीं बतलाई। संभव है उन्हें भी इस विषय में जानकारी न रही हो। पुराने ऋषि मुनियों द्वारा मिला ज्ञान तो युग परिवर्तन के साथ लगभग लोप ही हो गया।

इस संसार में पैदा होना तथा बढ़ना, शिशु से बालक, बालक से युवा, युवा से वृद्ध होना तथा समय आने पर संसार को छोड़कर चले जाना, यही जीवन का साधारण क्रम है। मानव, पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पति (पेड़ पौधे) आदि सभी का जीवन इस क्रम के अनुसार चलता रहता है। हम भी अपने जीवन के इसी क्रम के अधीन सब कुछ करते रहते हैं। थोड़ा सोचें कि हमारे ही समान पशु, पक्षी, वनस्पति आदि का भी जीवन क्रम यही है तो हमारे तथा इनके जीवन में क्या अंतर रहा। वनस्पति में तो साधारणतः प्राण (जीवन) लेना मानते ही नहीं जो सही नहीं है। पशु, पक्षी में प्राण होना भी मानते हैं परंतु उनमें वह बुद्धि नहीं होती जो मानव में होती है। इसी बुद्धि के कारण वह इन सब पर शासन करता, जीवन में बड़े-बड़े कार्य करता और सुख भोगता है। यह एक बड़ा अंतर मानव में और अन्य प्राणियों में है।

मानव यदि अपने भगवान की दी हुई इस दिव्य प्रतिभा अर्थात बुद्धि को अपने जीवन की आवश्यकताओं के अतिरिक्त यदि इस खोज में लगावें कि “हम क्या हैं ? कहां से आए हैं ? कहां जाना है ?” और विचार करें तो संभव है वह अपना जीवन क्रम ही बदल डालें। परंतु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं उसे इस ओर

ध्यान देने का ना तो इस व्यस्त जीवन में अवकाश मिलता है और न उसकी ऐसी इच्छा ही होती है । अधिकतर स्थूल शरीर की ओर कुछ सूक्ष्म (मानसिक) आवश्यकताओं का जैसे मन बहलाव के साधन इत्यादि इन्हें प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर पाता। तथा इन्हीं में सुख की खोज करता रहता है।

मानव मात्र (तथा प्राणी मात्र) की इच्छाओं, आवश्यकताओं की ओर यदि हम ध्यान दें तो हम इन्हें तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं -

1. पहली इच्छा तो यह होती है कि मैं सदा ही बना रहूँ, स्वस्थ रहूँ, जरा (बुढ़ापा) मृत्यु से रहित रहूँ।

2. दूसरी इच्छा उसे बहुत कुछ जान लेने की होती है। क्या अच्छा है ? क्या बुरा है ? उसके आस-पास और दूर-दूर स्थानों में क्या हो रहा है ? यह सब वह जानना चाहता है।

3. तीसरी इच्छा उसे आराम, सुख अथवा आनंद होने की सदा बनी रहती है और किसी प्रकार के कष्ट, दुख, असुविधा आदि से दूर रहना चाहता है।

यह तीनों इच्छाएं आपको प्राणी मात्र में मिलेंगी। परंतु इनमें से कोई एक भी पूरी नहीं हो पाती और इन्हें पाने के प्रयास में उसकी आयु पूरी हो जाती है।

पहली इच्छा को सत्, दूसरी को चित् और तीसरी को आनंद कहते हैं। इन तीनों को मिला देने से भगवान का नाम सच्चिदानंद बन जाता है। जीवात्मा भगवान परमात्मा का एक अंश है। इसी कारण उसमें भी इन तीनों का भंडार है। वही सच्चिदानंद परमात्मा है। सच्चिदानंद को यदि पा सके तो हमें यह तीनों पदार्थ स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण से भी पार हो जाते हैं।

यह सब कैसे प्राप्त हो और अथाह सागर स्थूल, सूक्ष्म और कारण का कैसे पार हो, यही हमारा विचारणीय विषय हो। सबसे पहले तो स्थूल से जन्म-जन्मांतर का चलता चला आ रहा चिपकाव छोड़ना होगा। सूक्ष्म में चलना और उसे पार

करना होगा। फिर इसी कारण को भी पार करना होगा। बहुत लंबा रास्ता है। क्या इसे पार कर सकना इस जीवन में संभव है ?

सन्तों की भाषा में इसका उत्तर यह है कि "यह संभव ही नहीं अपितु सरल भी है।" इसके लिए निश्चित मार्ग है और उस पर चलने के लिए कुछ नियम भी हैं। उस मार्ग पर चलना और नियमों का पालन आपको करना होगा। आपको निरंतर अभ्यास करना होगा और यों कहिए कि एक प्रकार से अपने जीवन का दृष्टिकोण भी बदलना होगा। संतों के पास ऐसे साधन भी प्राप्त हैं जो आपको यह सब कार्य सरलता से करा देंगे और आप के सामान्य जीवन में किसी प्रकार की बाधा भी नहीं पड़ेगी।

इस सबके लिए आपको स्वयं को तैयार करना होगा और मार्ग पर आना अवश्य पड़ेगा। फिर आपको पूर्ण निर्देशन, सहायता आदि सब कुछ प्राप्त होगा। यदि आप उनके (संत सद्गुरु के) पूर्ण विश्वास, श्रद्धा तथा समर्पण की भावना से शरणागत हो गए तो वे स्वयं ही अपनी शक्ति से सारी सूक्ष्म और कारण आपको पार करा देंगे। इस प्रकार आप को पूर्ण सच्चिदानंद को प्राप्त करने में कोई कठिनाई ना होगी। आपकी जन्म जन्मांतर से चलती चली आ रही तीनों इच्छाएँ यहाँ पहुंच कर पूर्ण हो जाएंगी। अर्थात सत् - सदा बने रहने की इच्छा (अमरत्व), चित् - सब सृष्टि का ज्ञान तथा आनंद - सबसे उत्तम प्रकार का सुख सदा के लिए प्राप्त हो जाएगा।

भगवान कृष्ण ने भगवत गीता में महाराज अर्जुन से कहा कि "तू सब कुछ छोड़कर मेरी शरण हो जा मैं तुझे सारे पापों से मुक्त करा कर परम पद को पहुंचा दूंगा।" भगवद् गीता को पहले तो पढ़ते ही नहीं, पढ़ते हैं तो रहस्य भरी बातों को समझ नहीं पाते, कुछ समझ पाते हैं तो उस पर अमल नहीं कर पाते। यदि हम सचमुच ही महाराज अर्जुन की भांति बन गए तो भगवान को हमारे लिए किसी न किसी रूप में स्वयं ही आना पड़ जाएगा। बिना शरणागत हुए ही हम सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहें तो यह संभव नहीं है।

इस कलियुग में भी भगवान के द्वारा भेजे गए (अवतरित) संत इसी काम के लिए भेजे जाते हैं कि भूले-भटके जीवों का उद्धार करें। भगवान अपने बनाए सारे

जीवों के हितार्थ इन्हें यहां भेजते हैं। उन के साधन आंतरिक हैं तथा मन की विद्युत शक्ति को जागृत करके कराए जाते हैं जिससे उनकी गति कई गुना बढ़ जाती है। थोड़े समय में बहुत मार्ग तय हो जाता है। बाहरी स्थूल (जड़) पूजा मैं आपको उलझा कर यही चक्कर काटते रहने को नहीं छोड़ जाएंगे।

बिना मार्ग दर्शन तथा सहायता के स्थूल, सूक्ष्म और कारण इसमें से एक भी पार कर लेना आज कल के मानव के लिए अत्यंत कठिन (तथा असंभव भी) है। मानव की साधारण शक्ति सामर्थ्य के द्वारा यह पार नहीं हो सकता।

गुरु भगवान सबका भला करें।

15. भक्त और भगवान

(नारद जी)

सन 1928-29 की बात है। मैं कानपुर में पढ़ता था और शनिवार कि संध्या को श्रीमान् चच्चा जी महाराज (परम संत रघुबर दयाल साहिब) की सेवा में पहुंच जाता और सोमवार को कॉलेज के समय सीधा अपनी क्लास में पहुंच जाता था।

चच्चा जी महाराज वैसे भी और विशेषकर जब सोने के लिए पलंग पर लेटते तो उस समय अवश्य कोई किस्सा कहानी सुनाने के लिए कहा करते थे। मैं भी पैर दबाता जाता और बुद्धि के अनुसार कोई कहानी सुना देता। कभी-कभी आप स्वयं ही कोई ऐसी कहानी सुना देते जिससे थोड़ी बहुत हंसी भी हो और शिक्षाप्रद भी हो। उनके मुख कमल से सुनी हुई एक नारद जी की कथा आपके मनोरंजनार्थ लिख रहा हूँ।

नारद मुनि एक बार मृत्यु लोक में भ्रमण करते हुए एक छोटे से उपनगर में होकर जा रहे थे कि एक महाजन अपनी दुकान से उठ कर उनके पास दौड़ता हुआ आया और निवेदन किया "महाराज मेरे स्थान को पवित्र करो।" नारद जी भी मौन थे, उस महाजन के साथ चल दिए।

इस महाजन ने अपना ऐसा नियम बना रखा था कि जो कोई भी साधु सन्यासी उधर से निकलता, उसे अपने घर लाकर उसकी सेवा करता, उन्हें भोजन करा कर तृप्त करता और वे जाते समय उसे आशीर्वाद दे जाते। वह महाजन नारद जी को भी अपने घर लाया, सेवा की और उनको अच्छा भोजन कराया। नारद जी उसकी सेवा से प्रसन्न हो गए और बोले "विष्णु भगवान के पास जा रहे हैं, तुम्हें कुछ आवश्यकता हो तो बतलाओ।" महाजन बोला "आपके आशीर्वाद से मुझे व्यवसाय में अच्छी बचत हो जाती है, धन वैभव की तो कमी नहीं, हाँ अभी तक मेरे संतान नहीं है सो आपका आशीर्वाद हुआ तो वह भी हो जाएगी।" नारद जी बोले "हम

नारायण से तुम्हें संतान देने के लिए कहेंगे।"

अब नारद जी क्षीर सागर पहुँचे और नारायण से उस महाजन के लिए आग्रह पूर्वक कहने लगे कि महाराज वह बड़ा साधु सेवी है, उसके संतान होनी ही चाहिए। तब नारायण बोले, "मैं अभी ब्रह्मा जी को बुलाता हूं।" ब्रह्मा जी बुलाए गए और उन्होंने अपनी पोथी पत्रा खोलकर उस महाजन का ब्यौरा निकाला और बोले "महाराज इसके संतान के लिए तो लिखा ही नहीं है।" भगवान नारायण बोले, "नारद जी अब क्या करें ?" नारद जी बोले, जाने दो भगवान वह मेरा कोई सगा संबंधी थोड़े ही है। उसने मेरी सेवा की थी, अतः मैंने उसकी आवश्यकता आपके सामने रख दी।"

बात आई गई हुई। नारद जी जैसे पहले घूमा करते थे फिर घूमने निकल गए। कुछ समय के बाद जब वे फिर उधर से निकले तो उस महाजन ने उन्हें फिर पकड़ा, घर लाया और सेवा भोजन आदि से उन्हें प्रसन्न किया। नारद जी को पहली बात याद थी, बोले "भाई, हमने भगवान नारायण से तुम्हें संतान देने को कहा था, परंतु ब्रह्माजी ने आकर तुम्हारा लेखा जोखा खोल कर कहा कि इस महाजन के संतान का उल्लेख ही नहीं। अतः अब क्या करें ? मजबूरी है।" महाजन बोला "महाराज मैंने तो आपके आग्रह करने पर कहा था कि मेरे संतान नहीं है। मेरे भाग्य में नहीं है तो न सही आपने मेरे लिए कष्ट उठाया आपको कैसे धन्यवाद दूँ ?"

सूफी संतों की मान्यता अनुसार कुछ ऐसे अभ्यासी भी होते हैं जो किसी कारण से आध्यात्म में आगे बढ़ने तक तथा परम पद तक पहुंचने में रुक जाते हैं और उन्हें सिद्धियां मिल जाती हैं। परंतु वे अपने प्रियतम की याद में सब कुछ भूले हुए रहते हैं। सूफी संतों की भाषा में इन्हें "मजजूब" कहते हैं। यह भगवान के भक्त अवश्य होते हैं परंतु भगवान के प्रेम में ऐसे मस्त रहते हैं कि किसी की परवाह नहीं करते।

ऐसे ही एक संत महाजन की पकड़ में आ गए। उन्हें अपनी आदत के अनुसार महाजन अपने घर ले गया और सेवा तथा भोजन आदि से उन्हें प्रसन्न किया। चलने लगे तो बोले "सेठ क्या चाहता है ?" सेठ ने बड़े विनम्र भाव से कहा

“मुझे जो चाहिए वह मेरे भाग्य में नहीं है। मैं आप से क्या माँगुं ?” संत चौक कर बोले “क्या बकता है ?” महाजन ने नारद जी द्वारा दिया गया उत्तर स्पष्ट रुप से बता दिया। इस पर संत को क्रोध आ गया, बोले “किस लफ़ंगे के चक्कर में पड़ गए ?” कुछ और बुरा भला नारद जी के लिए कहा और बोले “एक, दो, तीन ओर चाहिए ?” महाजन हाथ जोड़कर खड़ा उनके मुख की ओर देखता रह गया और सन्त चल पड़े।

समय आने पर इस महाजन के एक-एक करके तीन पुत्र हुए। महाजन अपने परिवार सहित बहुत प्रसन्न रहने लगा।

इन दिनों कहीं भाग्य से नारद का फिर उधर आगमन हुआ और वह महाजन फिर उन्हें पकड़ कर घर लाया। नारद जी ने जो तीन बालक वहां खेलते देखे तो पूछा “ये बालक किसके हैं ?” सेठ ने नीचे सिर करके निवेदन किया, “महाराज आपके आशीर्वाद से तीनों पुत्र मेरे ही हैं।” नारद जी ने पूछा, “कैसे ?” उत्तर मिला कि, “एक संत मुझे आशीर्वाद दे गए थे।”

अब तो नारद जी के क्रोध का ठिकाना ना रहा। बोले “नारायण ने मेरी बात नहीं मानी और रास्ता चलते भिखमँगे की बात पर इसको संतान दे दी। अच्छा मैं अब नारायण के पास जाकर उनकी खबर लेता हूँ।”

भगवान नारायण तो सर्वज्ञ थे। उन्हें तुरंत खटका हुआ कि नारद जी क्रोध भरे आ रहे हैं, कहीं श्राप न दे दें। उन्होंने अपनी हालत ऐसी बना ली कि जैसे बड़े दुखी हों और नारद जी को द्वार पर ही मिल गए। बोले “नारद जी आप अच्छे आ गए। मुझे एक भक्त के घर जाने का आवश्यक काम आ गया है। आप भी मेरे साथ चलें।” नारायण को परेशान देखकर नारद जी अपना क्रोध भूल गए और साथ चल दिए।

दोनों चले जा रहे थे – प्रातः से दोपहर हो गया। चिलचिलाती धूप और रेगिस्तान में चलना। दूर-दूर तक कोई वृक्ष भी नहीं दिखता। नारद जी बोले “भगवान अब प्यास के मारे बुरा हाल हो गया है और आप हैं जो चलते चले जा रहे

हैं।" भगवान बोले "बस नारद थोड़ी दूर और है। हमारा एक भक्त यहां रहता है, उसी के पास चलना है।" थोड़ी देर में जब कुछ हरियाली दिखाई पड़ी तो नारद जी की जान में जान आई। दोनों कुटी तक पहुँचे। भक्त ने बाहर आकर उनका स्वागत किया पानी लाया और दोनों ने हाथ मुंह धोया। जल पिया तो थोड़ी और जान में जान आई। भक्त बोला "आपके लिए भोजन तैयार करता हूं।" थोड़ी देर में उसने आवाज लगा दी, "भगवान यहां चौके में पधारो। भोजन तैयार है।"

दोनों गए तो थालियों मैं गरम पूरी और थोड़ा सा नमक भक्त ने आगे बढ़ा दी। भूख के मारे नाराद जी का ऐसा बुरा हाल था कि भोजन पर टूट पड़े और लगे सटासट पूरियाँ उड़ाने। जब पेट भरा तो उन्होंने देखा कि वह भक्त पैर चूल्हे में दिए हुए है जिस पर कपड़ा बंधा जल रहा है और थोड़ा घी उस पर भी डालता जा रहा है। नारद जी ये सब देखकर घबरा गए और चिल्ला पड़े, "भगवान यह क्या हो रहा है ?"

क्या देखते हैं कि दोनों वैकुंठ के द्वार पर खड़े हैं न भक्त है न कुटी। भगवान कह रहे हैं, "नारद जी ऐसे भक्तों का मैं दास हूं। वे जो चाहे वो ही मुझे करना पड़ता है। क्या करूँ यह मेरी कमजोरी है। नारद जी मुझे क्षमा कर दो। इनके आगे मेरी कुछ नहीं चलती।"

नारद जी भौचक्के नारायण की ओर देखते रहते हैं। उनकी समझ में नहीं आया कि यह सब क्या खेल था। परंतु भक्त को कितना ऊंचा दर्जा भगवान देते हैं यह अवश्य उनकी समझ में आ गया।

गुरु भगवान सबका भला करें।

16. ध्यान

महर्षि पातंजलि के अष्टांग योग में सातवाँ स्थान "ध्यान" का आता है। इसके आगे आठवाँ स्थान समाधि का है। अष्टांग योग के पहले छः चरण यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा है।

यम पाँच हैं :-- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। नियम भी पांच ही है-- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान। इनके पालन से मनुष्य का स्वास्थ्य तथा आचरण बनता है, जीवन में मन की शुद्धता आती है। इसके अतिरिक्त भगवान में विश्वास भी दृढ़ होता है तथा मनुष्य योग का अधिकारी होता है।

आसन भी बहुत प्रकार के होते है, जिनके द्वारा शरीर के रोग दूर होते हैं तथा बल वीर्य की वृद्धि होती है, परंतु आध्यात्म (राजयोग) का संबंध केवल उन आसनों से है जिनसे अधिक देर तक बिना कष्ट के सरलता पूर्वक निश्चल बैठा जा सके।

इसी प्रकार "प्राणायाम" भी कई प्रकार के होते है। प्राण वायु के व्यायाम को ही प्राणायाम कहते हैं। हठ योग में आसन तथा प्राणायाम दोनों का ही महत्व है परंतु आध्यात्म के साधन जो राजयोग के अंतर्गत हैं, उनमें इन दोनों का महत्व उतना नहीं है। इन दोनों साधनों का संबंध अधिकतर शरीर के स्थूल भाग से है। फिर भी आसन की भांति अध्यात्म में प्राणायाम को भी सूक्ष्म रूप में ले लेते है।

पाँचवाँ साधन "प्रत्याहार" है। इसका अर्थ अपने मन को एक स्थान (बिंदु) पर केंद्रित करने के लिए अपने लिए निरंतर आते रहने वाले विचारों को हटा कर (मन को) एक ही लक्ष्य पर बार-बार लौटा कर लाना है। मन की उछल कूद तो सदा ही लगी रहती है। मन से अधिक शीघ्रगामी संभवत: भगवान की सृष्टि में और कुछ भी नहीं है। इसी मन को इधर-उधर जाने से रोक कर एक बिंदु पर जमाये रहना बड़ा कठिन कार्य है। केंद्र बिंदु से हट जाने पर उसे उसी ध्यान पर लौटा लाने

(प्रत्याहार के साधन) का अभ्यास करते-करते, धीरे-धीरे मन एकाग्र होने लगता है।

छठा साधन "धारणा" उस केंद्र बिंदु को, जो हमारा इश्क है इष्ट है और जिसे हम पकड़े रखना चाहते हैं तथा जिससे हम क्षण भर के लिए भी अलग रहना नहीं चाहते, उसी ही को अपने सामने सदा बनाए रखना "धारणा" है।

इन छहों के आगे का साधन सातवाँ "ध्यान" तथा अंतिम आठवाँ "समाधि" है। संतों के मार्ग में इन दोनों का महत्व है। धारणा में ध्यान बिंदु को लेते हैं तथा उस ही का केंद्र बना कर प्रत्याहार द्वारा अपने मन को उस पर केंद्रित कर के उस पर दृढ़ता से जमे रहने का अभ्यास करते हैं। यही "ध्यान" है।

साधारणतः हमें अपने मन को एकाग्र करना आता है। किसी भी खेल में लगे रहने के समय मन उसमें ऐसा लग जाता है तथा व्यस्त हो जाता है कि हम अन्य सारी बातें भूल जाते हैं। इसी प्रकार किसी भी सांसारिक कार्य में लग जाने पर भी मन एकाग्र हो जाता है। ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे सामने आते ही रहते हैं जिनमें हमें "प्रत्याहार" आदि की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। मन स्वतः ही उस ओर केंद्रित हो जाता है। कारण यह है कि हमें इन सब में एक प्रकार का सुख मिलता है। सुख की चाह प्राणी मात्र में स्वभाव से ही है। जहां भी जिस प्रकार भी मिले हम उस और दौड़ जाते हैं। जन्म-जन्मांतर से हमारा मन इस प्रकार के सांसारिक कार्यों में सुख की खोज करता रहा है। हमारा ऐसा स्वभाव (आदत) ही बन गया है। इस मन को हम सांसारिक कार्यों के अतिरिक्त किसी परमार्थ के साधन में लगाना चाहें, जिसकी की पहले से भी कोई जानकारी अथवा उसमें मन का लगाव नहीं है, तो यह मन उसे सरलता से ग्रहण नहीं करता, किसी न किसी बहाने से उससे भागना चाहता है।

हमारा जीवन क्रम ऐसी व्यस्तता का रहता है कि हमें सांसारिक कार्यों शरीर आदि के पोषण, रोजी-रोटी के तथा मन बहलाव के साधनों को प्राप्त करने से अवकाश नहीं मिलता। ध्यान तथा समाधि द्वारा हम जिस शुद्ध और उच्च कोटि का सुख अर्थात आनंद पा सकते हैं उसका हमें पता ही नहीं है। इस विषय को बतलाने वाले ही नहीं मिलते। कभी मिल भी जाते हैं तो हम इन साधनों को अपनी सामर्थ्य

तथा शक्ति के बाहर जान कर उन्हें कोई आधार नहीं देते । हमें इस ओर कोई आकर्षण नहीं दिखता। जहां आकर्षण होता है वहाँ बारंबार पहुँच जाते हैं।

ध्यान द्वारा जो उच्च कोटि का सुख अर्थात आनंद हमें प्राप्त हो सकता है उसकी लेशमात्र भी झलक यदि हमें मिल जाए तो हम उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो जाएँ। परंतु आरंभ में ही इस आनंद का स्वाद मिलना कठिन है। यह आनंद बाह्य इंद्रियों द्वारा नहीं समझा जा सकता । मन द्वारा कुछ समय अभ्यास करने पर ही इसका कुछ स्वाद मिलने लगता है।

सत्य तो यह है कि "ध्यान" कोई ऐसा कठिन साधन नहीं है जो सर्व साधारण की शक्ति सामर्थ्य से बाहर हो। यदि इसका मार्ग-दर्शन मिल सके तो इस में कठिनाई की कोई बात ही नहीं है। इसकी तकनीक लिख कर अथवा कह कर शब्दों में समझाना आवश्यक कठिन है, परंतु ध्यान करा देना और करा कर समझा देना, इसमें कठिनाई नहीं है। समझ लेने पर अभ्यास द्वारा इसमें तल्लीनता प्राप्त करना भी कठिन नहीं है। परंतु सीखना अवश्य पड़ेगा। इसके सीखने तथा इसमें बढ़ने की दिशा सही रहे इस का प्रबंध करने के लिए किसी जानकार व्यक्ति की आवश्यकता होगी जो इस राह की पूरी जानकारी रखता हो। यदि ऐसे महान व्यक्ति को, जो यह सब ऐसे हमें बतला ही नहीं अपितु करा कर समझा दे तथा हमारा अभ्यास भी पक्का करा दे, उसे हम गुरु की संज्ञा दें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

हमारा मार्ग जिस पर सभी संत चलते हैं स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण तथा इसके भी आगे चलने का है। ध्यान द्वारा इस मार्ग पर चलने से हमारी गति (स्पीड) कई गुना बढ़ जाती है। धीरे चलने वाला व्यक्ति यदि पथभ्रष्ट होगा तो थोड़ा बहुत ही भटकेगा जहां से फिर सही मार्ग पर लौट आ जाना कठिन ना होगा। परंतु शीघ्रगामी व्यक्ति भटका तो कोसों दूर निकल जाएगा जिससे उसका अपने निश्चित मार्ग पर लौटना कठिन तथा कभी-कभी असंभव भी हो जाएगा। हम रास्ते से भटके नहीं तथा हमारी दिशा सही रहे, इस के लिए हमें मार्गदर्शन वाले अर्थात् गुरु की आवश्यकता होती है । भटकाव तथा लौटाव में समय नष्ट करने के लिए हमें

अवकाश कहां ? जीवन सीमित है, हमें भटकाव में नष्ट करने के लिए समय नहीं है।

प्रत्याहार द्वारा धरणा को इस प्रकार पुष्ट (पक्का) करना कि एक बिंदु पर ठहरने लगे तथा जमी रहे यही "ध्यान" है। शास्त्रकारों ने इसकी तुलना तेल की लगातार गिरती हुई धारा से की है। इसी प्रकार मन भी अपने केन्द्र-बिंदु पर निरंतर लगा रहे तब ध्यान बनता है। संत अपनी प्राप्त की हुई शक्ति द्वारा हमारी धारणा तेल की धारा के समान सीधी करके ध्यान करा देते हैं, जिससे हम यह समझ पाते हैं कि ध्यान क्या है और कैसे होता है। फिर हम स्वयं अभ्यास करके तथा समय-समय पर उन गुरु से सहायता लेकर ध्यान करने की तकनीक सीख लेते हैं।

ध्यान मन का कार्य है। जैसा कि ऊपर कह आए हैं मन इतना चंचल है कि इससे अधिक शीघ्रगामी सृष्टि में और कुछ भी नहीं है। जन्म जन्मांतर के अभ्यास से यह मन ऐसा स्वच्छंद तथा स्वतंत्र रहने का आदी हो गया है कि किसी प्रकार का भी अंकुश तथा बंधन इसे सहन नहीं है। अपने जाने बूझे सांसारिक कार्यों में यही आनंद की खोज करता रहता है। यदि यहां से हटा कर कहीं और परमार्थ की ओर से लगाना चाहें तो यह झगड़ा करता है और वहां से किसी न किसी प्रकार भागना चाहता है। संसार में फँसे व्यक्तियों को आध्यात्म की ओर जाने से यही रोकता रहता है। आध्यात्म मार्ग की शुष्कता तथा सांसारिक मार्ग के आनंद आकर्षण दिखा कर हमें अपने निश्चित मार्ग से डिगाने का प्रयत्न करता रहता है। मन की इस प्रवृत्ति को सूफी मत में शैतान तथा बाइबिल की भाषा में सैटन कहते हैं। हमें इससे सावधान रहना चाहिए।

जैसे अन्य विषयों के सीखने-सिखाने के लिए अध्यापक, टीचर, उस्ताद आदि वर्ग निश्चित है तथा अपने-अपने विषय का ज्ञान होने के लिए विशेषज्ञ माने जाते है, इसी प्रकार इस मन की एकाग्रता सिखलाने वाले अध्यापक भी होते हैं जिन्हें "गुरु" अथवा "सद्गुरु" का नाम दिया जाता है परंतु सद्गुरु केवल वे ही समर्थ व्यक्ति कहे जाते हैं जिनकी स्वयं की पहुंच अध्यात्म के ऊंचे से ऊंचे स्थान तक हो तथा उनमें साधकों को भी वहां तक पहुंचा देने की क्षमता हो।

साधारणतः गुरु शब्द से आजकल के शिक्षक वर्ग कुछ चौंकते के अवश्य

प्रतीत होते हैं । इसका भी कारण है । संसार में अध्यात्म मार्ग में थोड़ी बहुत जानकारी तथा पुस्तकीय ज्ञान रखने वाले भी गुरु तथा सद्गुरु बनने का ढोंग रचाने लगे हैं और सांसारिक भोले भाले व्यक्तियों को अपने वाचक ज्ञान से प्रभावित करके फंसा लेते हैं। ऐसे गुरु बहुतों को शिष्य बनाकर उनके धन तथा सेवा से अपना काम बनाते और यथाशक्ति उन्हें फाँसें रखने का प्रयत्न तथा उपक्रम करते रहते है। हमें इन से सावधान रहना चाहिए।

याद रखिए कि यदि कोई गुरु हमें ध्यान की क्रिया सिखा कर हमारे मन के एकाग्र करने में सहायक नहीं हो सकता तो वह कदापि गुरु होने के योग्य नहीं है। मन को एकाग्र किए बिना ध्यान नहीं बन पाता, अंतः एकाग्र करने की क्रिया आवश्यक है। अपने आप ध्यान की क्रिया सफलतापूर्वक कर लेना विशेष व्यक्ति के लिए अथवा विशेष परिस्थितियों में संभव हो सकता है परंतु ध्यान की सही क्रिया सद्गुरु की शक्ति द्वारा ही सरलता से हो सकती है, सही दिशा का मार्ग-दर्शन भी उन्हीं के द्वारा मिल सकता है अन्यथा भटकाव का सदा भय है। साधारणतः हम कह सकते हैं कि बिना सद्गुरु के ध्यान के मार्ग में भटकाव एक प्रकार से निश्चित ही है।

हमारे मन की स्थिति अर्थात वृत्ति भी पांच प्रकार की है। पहली "क्षिप्त" वृत्ति है, जिसमें हम सब ही दुनिया की बातों को सोचते हैं। अधिकांशतः दुनियादार व्यक्तियों की यही वृत्ति उभरी हुई रही है।

दूसरी "मूढ़" है, निद्रावस्था तथा अन्य प्रकार से सुध-बुध न रहने की स्थिति "मूढ़" है। इसमें आलस्य के कारण विचार शक्ति से काम नहीं लिया जा सकता।

तीसरी वृति "विक्षिप्त" है। यह वृत्ति हमें ध्यान की अवस्था से खींचकर सांसारिक कार्यों की ओर ले जाती है।

चौथी "एकाग्र" वृत्ति है। इसमें मन की उछल कूद बंद हो जाती है। इसी को एकसुई भी कहते हैं। यह वृत्ति उभरने पर हमारा ध्यान ठीक से लगने लगता है।

इसके बाद पाँचवी निरोध वृत्ति है। इस वृत्ति के प्राप्त होने पर इधर-उधर के सारे विचार आना रुक जाते हैं। और ऐसी स्थिति देर तक बनी रहती है। इसमें मन का सोचने तथा इधर-उधर भागने का कार्य समाप्त हो जाता है और वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगता है।

पहले की तीन वृत्तियों से छुटकारा पाना तथा एकाग्र और निरुद्ध वृत्तियों पर आने में गुरु की पर्याप्त सहायता मिलती है। बिना सहायता के यह कार्य असंभव तो नहीं परंतु बहुत कठिन अवश्य है। उनकी तकनीक द्वारा ही इसमें ध्यान की क्रिया का ठीक-ठाक बनना और आगे की स्थिति "समाधि" तक पहुंचना सरल हो जाता है।

गुरु भगवान सबका भला करें।

17. भक्त और भगवान

(द्रोपदी)

महाभारत के पात्रों में महारानी द्रोपदी का विशेष स्थान रहा है। इसकी उत्पत्ति भी विशेष रूप से भ्राता धृष्टद् युद्ध के साथ अग्निकुंड से हुई थी फिर इन्हें स्वयंवर में से अर्जुन जीत कर लाए थे। भगवान कृष्ण की भगिनी सुभद्रा भी अर्जुन को ब्याही थी। इसी कारण महारानी द्रोपदी भी भगवान से भ्राता का संबंध मानती थीं। इन्हें भगवान कृष्ण के असाधारण सामर्थ्य और शक्तियों का पूर्ण रुप से ज्ञान था तथा उनकी श्रद्धा भगवान कृष्ण में पूरी थी।

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ यह के समय एक सभा में राजा शिशुपाल ने भगवान कृष्ण को सर्व पूज्य पद दिए जाने का विरोध किया और उन्हें बहुत गालियां दी। भगवान कृष्ण कभी पहले शिशुपाल की माता को वचन दे चुके थे कि वह शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा करेंगे। अतः शिशुपाल की गालियां सौ से अधिक हुई तभी भगवान ने पहले तो शिशुपाल को चेतावनी दी फिर उस चेतावनी को अनसुनी करने पर सुदर्शन चक्र द्वारा शिशुपाल का सिर काट दिया।

करुणा हाहाकार के बीच जब भगवान चक्र को वापस ले रहे थे तो थोड़ी असावधानी हो गई और भगवान की अंगुली के एक भाग में चोट आ गई और उसमें से खून निकलने लगा। महारानी द्रोपदी ने देखा तो तुरंत दौड़ी आई। अपनी साड़ी का एक टुकड़ा फाड़ कर पट्टी बनाई और जल में भिगो कर तुरंत उंगली में बाँध दी। भगवान को महारानी द्रोपदी की सूझबूझ और अपनी और महारानी द्रोपदी का आदरभाव देखकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि वह महारानी के स्वभाव की पूरी जानकारी रखते थे। परंतु इस सामयिक सहायता की छाप उनके हृदय पर इतनी गहरी पड़ी कि वे सोचने लगे कि महारानी को मैं इस सेवा के बदले क्या दूँ। परंतु वे उस समय कुछ सोच कर चुप हो गए।

आगे चलकर जब पांडव जुए में अपना सर्वस्व हार कर पहले अपने आप

को और फिर महारानी द्रोपदी को भी दांव पर लगा कर हार गए, तब तो महाराज दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपने भ्राता दुःशासन को भेज कर महारानी द्रोपदी को बुलवा लिया और भरी सभा में महारानी को निर्वस्त्र कर देने की आज्ञा दी।

द्रोपदी चीरहरण के समय कौरवों की सभा में भगवान कृष्ण स्वयं उपस्थित नहीं थे। भरी सभा में दुःशासन उसके वस्त्र उतार रहा था और बलपूर्वक उसकी साड़ी को खींचे ले रहा था। पांडव जन स्वयं को जुए में हार चुके थे, अतः गर्दन झुकाए चुपचाप इस लज्जाजनक कार्य को सहन कर रहे थे। द्रोपदी असहाय थी, करुण स्वर में रुदन करती जाती थी, अपने पूरे बल से दोनों हाथों से अपने वस्त्रों को समेटती जाती थी और "हा कृष्ण, हा कृष्ण" चिल्लाती जाती थी।

अपने भक्तों की सच्चे दिल से की गई पुकार पर भगवान दौड़े आते हैं, ऐसे अनगिनत उदाहरण इतिहास में मिले हैं। द्वारिका में कृष्ण भगवान इस समय महारानी रुक्मिणी से कुछ वार्तालाप कर रहे थे कि इतने में द्रोपदी के करुण शब्द "हा कृष्ण, हा कृष्ण" उनके कानों में पड़े। इन शब्दों को रुक्मिणी जी ने भी सुना। भगवान सोचते रहे। रुक्मिणी जी बोली - "भगवान् ! किस सोच में पड़ गये, यह करुण पुकार किस अबला की है ?"

भगवान बोले - "रुक्मिणी, यह पुकार महारानी द्रोपदी की है। उसे पांडव लोग जुए में हार गए हैं और कौरव भरी सभा में उस को निर्वस्त्र कर रहे हैं।"

रुक्मणी बोली - "भगवान आप देर काहे को करते हैं, तुरंत जाइए और उसकी लाज बचाइए।"

रुक्मिणी के बार-बार आग्रह करने पर भगवान महलों से निकल कर बाहर गए परंतु कुछ क्षणों में वापस आ गए। "हा कृष्ण, हा कृष्ण" की पुकार अब भी आ रही थी। रुक्मिणी जी को इस बार अत्यंत आश्चर्य हुआ और नारी स्वभाव से आवेश में आकर बोली - "भगवन, एक निस्सहाय अबला आपको सहायता के लिए पुकार रही है, क्या आप अपना विरद भूल गए की आप 'निर्बल के बल' हैं क्योंकि क्यों नहीं

उसकी सहायता करते ?"

भगवान मुस्कराए और बोले – "प्रिये, क्रोधित ना हो, मुझे अपने विरद की खूब याद है और सदा से उसको निभाता आया हूँ, परंतु द्रोपदी को अभी मेरी सहायता की जरूरत नहीं है। अभी उसे अपना बल है क्योंकि उसने अपनी साड़ी का पल्लू अपने दांतों में पकड़ रखा है।"

रुक्मणी निरुत्तर हो गई - क्या कहे, भगवान ठीक ही कहते हैं कि "मैं निर्बल का बल हूँ।" जिसे अपना बल है उसे भगवान का बल कैसा ? थोड़ी देर और बीती, द्रोपदी का बल थक गया। अत्यंत आर्त स्वर में "हा कृष्ण" कहते-कहते उसके मुंह में केवल "हा" शब्द ही निकला, मुंह खुला रह गया और साड़ी का पल्ला एक झटके से छूट गया। वह वास्तव में निर्बल हो गई मुख से भले ही न पुकार रही हो, परंतु उसके अंतर्मन के करुण चित्कार को भगवान सह न सके। उन्होंने निर्वस्त्र होने से पहले द्रोपदी के साड़ी रूपी चीर में स्वयँ समा कर "वसन रूप" होकर उसकी लज्जा बचाई। दुःशासन खींचते-खींचते थक गया परंतु साड़ी की लंबाई का अंत न पा सका। द्रोपदी की लाज रख रखी गई।

देखने में तो कपड़े की एक छोटी सी पट्टी के बदले में इतना बड़ा वस्त्र दान भगवान ने किया, इस कथा का यह एक पक्ष है। परंतु वास्तविक एक दूसरा पक्ष यह है कि जब तक भक्त को अपना लेशमात्र भी बल रहता है तब तक भगवान चाहते हुए भी उसकी सहायता नहीं करते। सच्चे मायनों में निर्मल बनना यही है कि सिवाय भगवान के और किसी का आसरा ना हो।

गुरु भगवान सबका भला करें।